दिसंबर – 2020
वर्ष-84 | अंक-12 | ₹-19 प्रति | ₹-220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

11 वेदों का सार है गीता

18 आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान है ध्यान

30 आत्मविश्वास से मिलती है सफलता

46 समय की कीमत समझें, उसका सही नियोजन करें

आस्तिक बनो

ईश्वरभक्ति का जितना ही अंश जिसमें होगा, वह उतने ही दृढ़ विश्वास के साथ ईश्वर की सर्वव्यापकता पर विश्वास करेगा, सबमें प्रभु को समाया हुआ देखेगा। आस्तिकता का दृष्टिकोण बनते ही मनुष्य भीतर और बाहर से निष्पाप होने लगता है। अपने प्रियतम को घट-घट में बैठा देखकर वह सबसे नम्रता का, मधुरता का, स्नेह का, आदर का, सेवा का, सरलता, शुद्धता और निष्कपटता से भरा हुआ व्यवहार करता है। भक्त अपने भगवान के लिए व्रत, उपवास, तप, तीर्थयात्रा आदि द्वारा स्वयं कष्ट उठाता है और अपने प्राणबल्लभ के लिए नैवेद्य, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, भोग-प्रसाद आदि कुछ-न-कुछ अर्पित करता-ही-करता है। स्वयं कष्ट सहकर भगवान को कुछ समर्पण करना, पूजा की संपूर्ण विधि - व्यवस्थाओं का यही तथ्य है। भगवान को घट-घट वासी मानने वाले भक्त अपनी पूजा विधि को इसी आधार पर अपने व्यावहारिक जीवन में उतारते हैं। वे अपने स्वार्थों की उतनी परवाह नहीं करते, खुद कुछ कष्ट भी उठाना पड़े तो उठाते हैं, पर जनता - जनार्दन को, नर-नारायण को अधिक सुखी बनाने में वे दत्तचित्त रहते हैं । लोकसेवा का व्रत लेकर वे घट-घट वासी परमात्मा की व्यावहारिक रूप से पूजा करते हैं। ऐसे भक्तों का जीवन-व्यवहार बड़ा निर्मल, पवित्र, मधुर और उदार होता है। आस्तिकता का यही तो प्रत्यक्ष लक्षण है।

– पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 84
अंक	: 12
दिसंबर	: 2020
मार्गशीर्ष-पौष	: 2077
प्रकाशन तिथि	: 01.11.2020

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-
आजीवन (बीसवर्षीय)	
भारत में	: 5000/-

दायित्व

यह संपूर्ण विश्व परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है। परमात्मा अगोचर है, अव्यक्त है और इसीलिए इस जगत को, इस विश्व को उनकी व्यक्त रूप में की गई अभिव्यक्ति मानना चाहिए। ऐसा होने के साथ ही सृष्टि का अस्तित्व मनुष्य को सृजन की शिक्षा भी प्रदान करता है। जब समस्त गुणों के पार होते हुए भी, त्रिगुणातीत होते हुए भी परमात्मा सृष्टिनिर्माण के कार्य को उसी मनोयोग के साथ करते हैं तो क्या कारण है कि हम अपने दायित्वों के निर्वहन से वंचित रह जाते हैं ?

इसके अतिरिक्त सृष्टि का संतुलन मनुष्य को भी अपने आंतरिक स्वरूप में समत्व की प्राप्ति की प्रेरणा देता है। जब परमात्मा अपने सभी प्राणियों के प्रति समभाव रखते हुए सृष्टि की व्यवस्था को बनाए रखते हैं तो मनुष्य को भी प्रत्येक प्राणी के साथ आत्मभाव रखते हुए समत्व का पालन करना चाहिए।

अपने मूलस्वरूप का भान होते ही व यह बोध जगते ही कि हम परमात्मा का, उनके ईश्वरीय रूप का एक अंश हैं—मनुष्य आंतरिक व बाह्य दृष्टि से संतुलित हो जाता है। यह सृष्टि हमें अपने दायित्व का निर्वहन करने व सर्वत्र साम्य व संतुलनपूर्ण व्यवहार करने की प्रेरणा देती है और यही भाव बनाए रखना हमारा पवित्र कर्त्तव्य है। ❑

▶ 'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष ◀

विषय सूची

❁ दायित्व 3

❁ **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
भूगर्भीय हलचलों के विषय में
गहन शोध की आवश्यकता 5

❁ करत-करत अभ्यास के 7

❁ भक्ति का मर्म 9

❁ **पर्व विशेष (गीता जयंती)**
वेदों का सार है गीता 11

❁ आरामपसंदगी बना रही है हमें बीमार 13

❁ मानुष तन अनमोल है 15

❁ आध्यात्मिक समस्याओं का
समाधान है ध्यान 18

❁ बुद्धत्व की प्राप्ति 20

❁ वैदिक विज्ञान के ज्ञाता ऋषि दयानंद 22

❁ प्रारब्ध कर्मों का अटल विधान 25

❁ आत्मविश्वास को कुछ ऐसे बढ़ाएँ 27

❁ गुरु नानकदेव की तप-साधना 29

❁ आत्मविश्वास से मिलती है सफलता 30

❁ अपने स्वास्थ्य का भी रखें ध्यान 32

❁ धर्म ही है जीवन का आधार 34

❁ **चेतना की शिखर यात्रा—219**
विडंबना और तथ्य 37

❁ अन्नदाता किसानों के श्रममूल्य का निर्धारण 40

❁ **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—140**
यौगिक विधियों का किशोरों पर प्रभाव 43

❁ समय की कीमत समझें,
उसका सही नियोजन करें 46

❁ उत्कृष्ट व पवित्रतम भावना है प्रेम 48

❁ **युगगीता—247**
बंधन या मुक्ति का द्वार हैं ये स्वभाव 50

❁ प्राणायाम से साधें स्वस्थ शरीर 52

❁ सेवा ही सच्चा धर्म है 54

❁ **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—3**
गायत्री की पंचकोशी साधना 56
(समापन किस्त)

❁ **विश्वविद्यालय परिसर से—186**
राष्ट्रसेवा के संकल्प से सिक्त हुआ
विश्वविद्यालय 62

❁ **अपनों से अपनी बात**
महामानवों के इस समूह को
अब जगाना ही पड़ेगा 63

❁ **गीता जयंती, 25-12-2020 के अवसर पर**
भगवद्गीता का सद्ज्ञान (कविता) 66

आवरण पृष्ठ परिचय

उदीयमान सूर्य : उज्ज्वल भविष्य का संकेत

दिसंबर—2020 व जनवरी—2021 के पर्व-त्योहार

शुक्रवार	11 दिसंबर	उत्पत्ति एकादशी
सोमवार	14 दिसंबर	सोमवती अमावस्या
रविवार	20 दिसंबर	सूर्य षष्ठी
शुक्रवार	25 दिसंबर	गीता जयंती/क्रिसमस/ मोक्षदा एकादशी
मंगलवार	29 दिसंबर	दत्तात्रेय जयंती/पूर्णिमा
शनिवार	09 जनवरी	सफला एकादशी
मंगलवार	12 जनवरी	स्वामी विवेकानंद जयंती/ राष्ट्रीय युवा दिवस
बुधवार	13 जनवरी	लोहड़ी/ मार्गशीर्ष अमावस्या
गुरुवार	14 जनवरी	मकर संक्रांति
मंगलवार	19 जनवरी	सूर्य षष्ठी
बुधवार	20 जनवरी	गुरु गोविंदसिंह जयंती
शनिवार	23 जनवरी	सुभाष चंद्र बोस जयंती
रविवार	24 जनवरी	पुत्रदा एकादशी
मंगलवार	26 जनवरी	गणतंत्र दिवस
गुरुवार	28 जनवरी	पौष पूर्णिमा
शनिवार	30 जनवरी	शहीद दिवस

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** ***—संपादक***

▶'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

भूगर्भीय हलचलों के विषय में गहन शोध की आवश्यकता

वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में यह जानकर आश्चर्यचकित होने वालों की संख्या कम नहीं होगी कि आज के समय में हमारी जानकारी सूर्य और अंतरिक्षीय पिंडों के विषय में जितनी है, उससे कहीं कम ज्ञान हम अपनी ही पृथ्वी के विषय में रखते हैं। इसी अल्पज्ञता के कारण आज भी हमारे लिए ज्वालामुखियों के फूटने एवं भूकंपों के आने का पूर्व अनुमान लगा पाना संभव नहीं हो सका है।

ज्वालामुखियों व भूकंपों की गतिविधियों के मध्य अंतर्संबंधों का अनुमान लगा पाना धरती के केंद्र या कोर के सही आकलन के बाद ही संभव है। धरती की सतह से धरती के केंद्र की दूरी करीब 6370 किमी० है और वैज्ञानिक गणना के अनुसार यदि हम सतह से केंद्र तक एक सुरंग बनाएँ और उसमें एक बॉल डालें तो उस बॉल को केंद्र तक पहुँचने में मात्र 45 मिनट का समय लगेगा।

आश्चर्य की बात यह है कि अनेक प्रयत्नों-प्रयासों के बाद भी हमारे लिए आज तक उस दूरी का 1 मिनटवाँ हिस्सा पूरा कर पाना संभव नहीं हो सका है। अनेक प्रयासों के बाद भी जो अधिकतम दूरी वैज्ञानिकों द्वारा इस दृष्टि से तय की जा सकी है, वो मात्र 11 किमी० की है। स्पष्ट है कि अभी हमें भूगर्भीय हलचलों के विषय में और सटीक जानकारी विकसित करने की आवश्यकता है।

यदि भूकंपों के इतिहास को उठाकर देखें तो उसमें चिली में आए सन् 1960 के भूकंप को याद किया जा सकता है। 8.6 रिक्टर पैमाने पर आए इस भूकंप की तीव्रता इतनी ज्यादा थी कि उसके कारण समुद्र में उठी सुनामी ने 10000 किमी० का सफर तय करके हवाई में 500 इमारतें ध्वस्त कर दीं, जिसमें 6000 लोग मारे गए थे। एक ऐसा ही भूकंप 1 नवंबर, 1755 को लिस्बन में आया था। 6 मिनट तक 9 रिक्टर पैमाने पर आए इस भूकंप ने 60000 से ज्यादा लोगों को मृत्यु के घाट उतार दिया था।

इनमें से ज्यादातर भूकंप उन स्थानों पर आते हैं, जहाँ 2 टेक्टोनिक या भूगर्भीय प्लेटें मिलती हैं। जहाँ ये प्लेटें आपस में मिलती हैं, वहाँ ये लगातार एकदूसरे से टकराती हैं, जिसके कारण एक तरह का भूगर्भीय तनाव पैदा होता है—जो भूकंप जैसे घटनाक्रम के माध्यम से ही हलका होता है।

उदाहरण के तौर पर टोक्यो शहर तीव्र टेक्टोनिक प्लेटों के मिलने के स्थान पर बसा हुआ है और इसीलिए यहाँ भूकंप आने की संभावना सदा बनी रहती है। यद्यपि सामान्य क्रम में भूकंप प्राणघातक परिणामों को ही लेकर आते हैं तथापि भूकंप बहुत-सी ऐसी घटनाओं को भी जन्म देते हैं, जिनको हम अत्यंत महत्त्व के साथ देखते हैं। उदाहरण के तौर पर भूकंपों के कारण ही किंबरलाइट पाइप्स, जो धरती के 200 किमी० भीतर से आते हैं, वे उसी गहराई से हीरों को लेकर के आते हैं। साउथ अफ्रीका में पाई जाने वाली हीरे की खदानें हों या दक्षिण भारत की हीरे की खदानें वो किन्हीं इसी प्रकार के भूगर्भीय घटनाक्रमों का परिणाम हैं।

धरती की आंतरिक संरचना मूल रूप से चार तलों से बनी है। इसमें एक बाहरी चट्टानी परत है, जिस पर हम लोग रहते हैं। इसके नीचे में मेंटल, उसके नीचे तरल कोर व उसके भीतर एक ठोस कोर की परत है। इस कोर के अंदर मेटेलिक या धातवी तत्त्वों; जैसे मैग्नीशियम के होने के कारण धरती का चुंबकीय क्षेत्र बनता है और दोनों धरती के सिरों पर उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों का निर्माण हो पाता है।

ऐसा नहीं है कि ये चुंबकीय तत्त्व मात्र ध्रुवों का ही निर्माण करते हैं—इसके अतिरिक्त ये हमें घातक अंतरिक्षीय किरणों से बचाते हैं, जो निरंतर हमारे ऊपर हमला कर रही हैं। उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव पर बनने वाली 'ऑरोरा', इन चुंबकीय क्षेत्रों के इन अंतरिक्षीय किरणों से टकराने की वजह से ही बनती है। चिंता की बात यह है कि हर कुछ लाख वर्षों में ये चुंबकीय क्षेत्र अपने आप बदल जाते हैं।

विगत 100 करोड़ वर्षों में ऐसा 200 बार हो चुका है और वैज्ञानिक गणना पर यकीन करें तो हम शायद अभी एक ऐसी ही प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। पिछले 100 वर्षों में ही धरती का चुंबकीय क्षेत्र 6 % के करीब गिर गया है और

यदि ध्रुवों का क्षेत्र पलटा तो धरती फिर से हिमयुग की ओर बढ़ चलेगी।

धरती के नीचे प्लेटों की गतिविधि जहाँ भूकंप को जन्म देती है तो वहीं ज्वालामुखियों का फटना भी इसी कारण से होता है। अमेरिका में स्थित यलोस्टोन पार्क एक ऐसा ही महाज्वालामुखी या सुपर-वोल्केनो है कि जिसका फटना, संपूर्ण मानव जाति की तबाही का कारण बन सकता है। जैसे दक्षिण भारत में आज से 65 करोड़ वर्ष पहले फटे ज्वालामुखी ने डायनोसोरों को धरती से नष्ट करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

यलोस्टोन ज्वालामुखी जब अंतिम बार फटा था, तब उसमें से निकली ऊर्जा, 22 करोड़ परमाणु बमों के फटने के बराबर थी। अगस्त, 1883 में जब इंडोनेशिया का क्राकाटोआ ज्वालामुखी फटा था तो उसकी आवाज इंग्लैंड तक में सुनाई पड़ी थी और इस ज्वालामुखी से निकली ऊर्जा, यलोस्टोन ज्वालामुखी के अंतिम बार फटने पर निकली ऊर्जा से 20000 गुना कम थी।

इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि यह फटा तो कितनी भीषण तबाही लाएगा। औसतन यलोस्टोन हर 6 लाख वर्ष में एक बार फटता है और अभी यह विगत 630000 वर्षों से नहीं फटा है। वैज्ञानिकों का अनुमान कहता है कि यह कभी भी फट सकता है। इसका एक बार फटना संपूर्ण अमेरिका को पानी के गर्त में ले जाएगा और आधे से ज्यादा यूरेशिया को पानी की लहरों के नीचे ला फेंकेगा।

भूकंपों व ज्वालामुखियों के इन रौद्र रूपों को देखकर अंदाजा लगाया जा सकता है कि यदि इनमें से एक भी अपने विकराल रूप को धारण कर ले तो मानवता अपने अस्तित्व को बचाने का प्रयास करती नजर आएगी। दुर्भाग्यवश इतना विकास होने के बाद भी आज हमारी इस क्षेत्र में जानकारी न्यूनतम ही है। हम चंद्रमा व मंगल ग्रह पर पहुँच जरूर गए हैं, पर अभी अपने ही ग्रह की हमारी जानकारी बहुत ज्यादा नहीं है। यदि भविष्य में ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण संभावनाओं को साकार होने से रोकना है तो आवश्यकता यही है कि हम इस विषय में अपनी जानकारी को और बढ़ाने का प्रयत्न करें। ❑

गंगा किनारे बने एक आश्रम में महर्षि मुद्गल अपने अनेक शिष्यों को शिक्षा प्रदान किया करते थे। उन दिनों वहाँ मात्र दो शिष्य विद्याध्ययन कर रहे थे। दोनों गुरु का बहुत आदर करते थे और गुरु भी उन्हें पुत्रवत् स्नेह करते थे। धीरे-धीरे वे दोनों पारंगत विद्वान बन गए, परंतु वे दोनों अहंकारी भी हो गए और स्वयं को एकदूसरे से श्रेष्ठ समझने लगे। एक दिन महर्षि स्नान करके पहुँचे तो देखा कि अभी सफाई नहीं हुई है और दोनों शिष्य सोये हुए हैं। महर्षि ने दोनों को जगाकर सफाई करने के लिए कहा तो दोनों एकदूसरे को सफाई करने का आदेश देने लगे। दोनों ने एकदूसरे से कहा कि मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ, इसलिए सफाई करना मुझे शोभा नहीं देता। महर्षि दोनों की बातें सुन रहे थे। उन्होंने कहा—"तुम दोनों ठीक कह रहे हो। तुम विद्वान व श्रेष्ठ हो।" ऐसा कहकर वे झाड़ू उठाकर सफाई करने लगे। यह देखते ही दोनों शिष्य शरम से पानी-पानी हो गए। उनका अहंकार पिघल गया। वे दोनों गुरु से क्षमा माँगकर सफाई में जुट गए।

करत-करत अभ्यास के

अभ्यास का महत्त्व सर्वविदित है। इसका प्रभाव जादुई होता है। चट्टान से टकराती समुद्र की लहरें उस पर अपना निशान छोड़ जाती हैं। मिट्टी का घड़ा पत्थर को घिसते-घिसते एक गड्ढा बना देता है। नदी के संग लुढ़कता पत्थर एक दिन शिवलिंग का रूप ले लेता है। निस्संदेह रूप में यह एक लंबी प्रक्रिया होती है, लेकिन इसके परिणाम चमत्कारी होते हैं। आश्चर्य नहीं कि मन जैसे चंचल तत्त्व के निग्रह के लिए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को अभ्यास का ही उपदेश देते हैं।

वस्तुत: अभ्यास का कोई विकल्प नहीं। जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता का यह सबसे बड़ा तत्त्व है। किसी भी महान वैज्ञानिक, दार्शनिक, संत या महापुरुष के जीवन में झाँककर देखें तो पाएँगे कि उनके जीवन की सफलता का राज उनका अभ्यास ही रहा। तमाम प्रतिकूलताओं, विषमताओं के बावजूद वे अपने अभ्यास में अटल रहे। उनका प्रयास अनवरत रूप से निरंतर गति से चलता रहा, जिसके बल पर वे अपने निर्धारित क्षेत्र में उत्कृष्टता के शिखर तक पहुँचे।

बार-बार का अभ्यास आदत का निर्माण करता है। यदि अभ्यास अच्छे कर्म का हुआ तो अच्छी आदत बनती है और यदि अभ्यास गलत काम का हो गया तो फिर व्यक्ति गलत आदतों का शिकार हो जाता है। यदि एक बार गलत आदतें पड़ जाएँ तो फिर उनसे पिंड छुड़ाना कठिन हो जाता है, लेकिन ऐसे में निराश होने की आवश्यकता नहीं। यदि जाने-अनजाने में कोई गलत आदत पड़ गई तो उसका भी उपचार है। अभ्यास का सहारा ऐसे में तारणहार बनता है। बुरी आदतों को अभ्यास से दूर किया जा सकता है। बस, आवश्यकता निरंतर प्रयास की है।

अभ्यास की महान शक्ति से प्राय: हम परिचित नहीं होते। प्रारंभ में टाइप करना एक असंभव-सा कार्य लगता है, लेकिन बार-बार इसके अभ्यास से एक दिन उँगलियाँ स्वत: ही चलने लगती हैं और व्यक्ति बिना देखे तक टाइप कर लेता है।

यह अभ्यास का कमाल होता है। साइकिल से लेकर तैराकी जैसे कार्य जो प्रारंभ में असंभव से लगते हैं, वे अभ्यास के कारण सरल-सहज बन जाते हैं। यह सब अभ्यास की शक्ति को ही दरसाते हैं।

शांति, आत्मिक उत्कर्ष और दिव्यता के अभीप्सु साधक के लिए तो अभ्यास की और भी अधिक आवश्यकता होती है। इंद्रियाँ और मन पहले ही गलत मार्ग पर चलने के आदी होते हैं। ये दो मिनट के सुख के लिए पूरे जीवन को चौपट करने पर आमादा रहते हैं। इस धारा के विपरीत इन्हें ऊर्ध्वमुखी दिशा देना दृढ़ संकल्प एवं अभ्यास की माँग करता है। इसके विपरीत यदि हम मन को मनमानी करने की ढील दे रहे होते हैं तो ऐसी स्थिति यही दरसाती है कि हम अपने सुधार के लिए संकल्पित नहीं हैं, अपनी साधना के प्रति निष्ठावान नहीं हैं। हमारा अभ्यास अभी कच्चा है। हम अभी आध्यात्मिक पथ पर आरूढ़ नहीं हुए हैं।

अंदर झाँककर देखें तो पाएँगे कि हमारे दु:खों का वास्तविक कारण मन पर नियंत्रण का अभाव है। इसके कारण हम अपने लक्ष्य पर केंद्रित नहीं हो पाते। मन की अनुशासनहीनता और दुराचरण के कारण एकाग्रता का अभाव रहता है। बिगड़ैल मन हमें अपने इशारों पर नचाता रहता है। किसी नशे का आदी व्यक्ति यह जानते हुए भी कि इसका हर डोज उसे बेहोशी, गंभीर रोग और मृत्यु की ओर धकेल रहा है, उसे नहीं छोड़ पाता व उसके समाप्त होने पर उसे पाने के लिए तड़पता है, उसके लिए कुछ भी करने के लिए तैयार रहता है। यदि व्यक्ति में अच्छी आदत डालने के लिए ऐसी ही तड़प, ऐसा ही संकल्प जगे तो कोई उसकी शांति व प्रसन्नता के अर्जन को नहीं रोक सकता।

वास्तव में आदतों से हमारे संस्कार बनते हैं, जिनके अनुरूप हमारा व्यक्तित्व ढलता है; जो फिर हमारी नियति को तय करता है। इसी तरह अच्छे कार्यों का सतत अभ्यास श्रेष्ठ संस्कारों के रूप में फलित होता है, जो व्यक्तित्व के सार रूप में एक अच्छे चरित्र का निर्माण करता है। इसके विपरीत बुरी आदतों का अभ्यास भविष्य में केवल अवांछनीय

परिस्थितियों का ही निर्माण करता है। यदि हम बुरी आदतों का सुधार करना चाहते हैं तो यह केवल अच्छी आदत या सदाचरण के माध्यम से ही संभव है। ऐसा अभ्यास हमें आत्मविश्वास देगा और साथ ही मन को सशक्त बनाएगा; जिसके साथ हम विपरीत या विषम परिस्थितियों के बीच भी शांति और आनंद के साथ रह सकेंगे।

कई लोग अपनी गलतियों या कमियों पर कुड़कुड़ाते रहते हैं और चिंतित रहते हैं कि वे कैसे इनके पार होंगे। यह एक बहुत चिंताजनक एवं हानिकारक स्थिति होती है, जो हमारी ऊर्जा को सोख लेती है और नकारात्मक प्रभावों को हमारे ऊपर हावी होने का अवसर देती है। इनके बजाय हमें संभावित समाधान पर विचार करना चाहिए और अच्छी आदत डालने का भरसक प्रयास करना चाहिए व अपने चरित्र को सशक्त बनाना चाहिए। साधु, संत एवं ऋषि आत्माएँ दीर्घकाल तक अपनी दिव्यता पर गहन श्रद्धा एवं आध्यात्मिक अभ्यास के बूते सशक्त चरित्र का निर्माण करती हैं और विषम परिस्थितियों में भी शांति एवं आनंद के साथ रहती हैं। ऐसे चरित्र के निर्माण के लिए या ऐसी स्थिति को पाने के लिए सत्संकल्प एवं इसके सतत अभ्यास का धैर्य एवं प्रयास चाहिए। लोग प्राय: इसका महत्त्व जानते हुए भी टाल-मटोल करते रहते हैं; जबकि आवश्यकता इसको दिनचर्या में प्राथमिकता देने व नित्यप्रति अभ्यास की है।

यदि ऐसा संकल्प जगे तो फिर एक भी दिन का नागा किए बिना इसका अभ्यास करना चाहिए; क्योंकि इसमें एक बार भी ढील करने पर फिर मन दोबारा वैसा न करने का बहाना खोज लेता है। अभ्यास का जादू तभी काम करता है, जब इसमें नियमितता हो। सर्कस में हवा में उछलने-कूदने से लेकर शेर-बाघ जैसे खूँखार जानवरों से करतब कराना वर्षों के नियमित अभ्यास का परिणाम होता है, जिसको देख दर्शक दाँतों तले उँगली दबाते हैं।

ऐसे ही यदि व्यक्ति ठान ले तो फिर मन को क्यों नहीं साध सकता। आवश्यकता लंबे अंतराल तक धैर्य एवं अध्यवसाय के साथ अभ्यास की है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन को वैराग्य के संग इसी अभ्यास को करने का संदेश देते हैं। साथ ही यह भी आश्वस्त करते हैं कि सत्पथ हेतु किया गया कोई भी प्रयत्न व्यर्थ नहीं जाता। धर्म के मार्ग पर स्वल्प-सा भी प्रयास महान भय से तारने वाला होता है। ऐसे में हमारा कर्त्तव्य बनता है कि पूरी दृढ़ता के साथ धर्म के पथ पर हर संभव प्रयास नियमित रूप से करते रहें, तो फिर समय के साथ जीवन शांति, संतोष और आनंद के रूप में फलित होगा। ❑

हकीम लुकमान अपने अंतिम समय में अपने बेटे को कुछ जीवनोपयोगी शिक्षा देना चाहते थे, इसलिए उन्होंने उसे बुलाकर एक कोयला और चंदन का टुकड़ा लाने के लिए कहा। वह दोनों लेकर पिता के पास पहुँचा। पिता ने दोनों को नीचे फेंक देने के लिए कहा। बेटे ने उन्हें नीचे फेंक दिया तो लुकमान ने बेटे से हाथ दिखाने को कहा। फिर वह उसका कोयले वाला हाथ पकड़कर बोले—"बेटा! देखा तुमने। कोयला पकड़ते ही हाथ काला हो गया। उसे फेंक देने के बाद भी हाथ में कालिख लगी रह गई। गलत लोगों की संगति इसी तरह की होती है—उनके साथ रहने पर भी दु:ख होता है और उनके न रहने पर भी जीवनभर दु:ख उठाना पड़ता है। दूसरी ओर सज्जनों का संग इस चंदन की लकड़ी की तरह है—जो साथ रहते हैं तो दुनिया भर का ज्ञान मिलता है और उनका साथ छूटने पर भी उनके विचारों की महक जीवनभर साथ रहती है। सदैव अच्छे लोगों की संगति में रहना। तुम्हारा जीवन सुखद रहेगा।"

भक्ति का मर्म

वैदिककाल की बात है। कांतिपुर में चोल नामक चक्रवर्ती नरेश राज्य करते थे। राजा निरंतर दान-पुण्य तथा यज्ञादि किया करते थे, परंतु समय के साथ उनके मन में यह अभिमान आ गया कि मैं बहुत बड़ा दानी और भगवान का बहुत बड़ा भक्त हूँ। वे समझने लगे कि मैं दान-पूजन करके भगवान को जितना प्रसन्न कर सकता हूँ, उतना दूसरा कोई नहीं कर सकता। वे अपने अभिमान में यह भूल गए कि भगवान धन के नहीं, भाव के भूखे होते हैं।

यदि मन निर्मल हो और हृदय में प्रभु के लिए सच्चा प्रेम हो तो ऐसे भक्त पर, साधक पर प्रभु की कृपा अवश्य ही बरसती है। फिर वह व्यक्ति, वह साधक गरीब है या अमीर, धनी है या निर्धन, किस जाति और संप्रदाय का है, राजा है या रंक, इससे कोई फरक नहीं पड़ता। वे यह भूल गए कि प्रभु तो साधक के, भक्त के मन की निर्मलता, पवित्रता और सच्चा प्रेम देखकर ही रीझते हैं, धन-दौलत देखकर नहीं।

राजा चोल के नगर में ही विष्णुदास नामक एक गरीब ब्राह्मण रहते थे। वे हरिभक्त थे और नित्य हरिभक्ति में निरत रहते थे। उनका विश्वास था कि श्रद्धा-भक्ति से समर्पित पुष्प, जल आदि को पाकर भी प्रभु प्रसन्न हो उसे ग्रहण करते हैं, स्वीकार करते हैं। समुद्र तट पर एक मंदिर था, जिसमें राजा चोल और विष्णुदास प्रतिदिन पूजा करने जाया करते थे।

एक दिन राजा चोल भगवान की पूजा कर मंदिर में बैठे थे। वे बड़े ही शाही अंदाज में, राजसी ठाठ-बाट के साथ भगवान का विशेष शृंगार-पूजन कर मंदिर में बैठे थे। उन्होंने बड़े ही महँगे, स्वर्ण-आभूषण एवं हीरे-माणिक्य आदि के साथ भगवान के विग्रह का विशेष शृंगार-पूजन किया था और इसे देखकर वे बड़े गौरवान्वित भी थे कि भगवान का ऐसा शृंगार-पूजन उनके अलावा दूसरा कौन कर सकता है।

दैवयोग से उसी समय भक्त विष्णुदास भी एक पात्र में जल और तुलसी दल, पुष्पादि से भरी छोटी-सी डलिया लेकर भगवान के पूजन को उस मंदिर में आए। वे भक्तिभाव में डूबे हुए थे। वे भगवान श्रीहरि के विग्रह के पास बड़े ही प्रेमपूर्वक बैठकर उनका पूजन करने लगे। भगवान का विग्रह उनके लिए साक्षात् श्रीहरि ही थे। भगवान के विग्रह को देखते ही उन्होंने भगवान श्रीहरि के दिव्य स्वरूप का ध्यान करते हुए अपना पूजन प्रारंभ किया।

उन्होंने भगवान को भक्तिपूर्वक स्नान कराया व सुगंधित गंध, पुष्प आदि अर्पित किए और हरिप्रेम में पूर्णरूपेण डूबकर श्रीहरि के दिव्यस्वरूप का ध्यान करते हुए उनकी स्तुति करने लगे। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा बहने लगी। वहाँ बैठे राजा ने देखा कि विष्णुदास ने जल आदि चढ़ाकर उनके द्वारा किए गए भगवान के शृंगार, वस्त्रादि को भिगो दिया है। राजा को विष्णुदास पर बड़ा क्रोध आया।

राजा ने विष्णुदास को कड़ी फटकार लगाते हुए कहा—"ऐ ब्राह्मण! तुझमें क्या तनिक-भी बुद्धि नहीं है? तूने भगवान का शृंगार क्यों खराब कर दिया? मैंने भगवान का कितना सुंदर शृंगार किया था। तुमने सब बिगाड़ दिया। भगवान का उतना सुंदर शृंगार बिगाड़कर और जल-पुष्पादि चढ़ाकर क्या तुम भगवान को प्रसन्न कर पाओगे? बिलकुल नहीं। भगवान को ऐसे प्रसन्न नहीं किया जाता।"

भक्त विष्णुदास बड़े ही विनम्र भाव से उत्तर देते हुए बोले—"राजन्! मुझे क्षमा करें। आपके द्वारा किए गए भगवान के विशेष शृंगार पर तो मेरी नजर ही नहीं गई। मैं तो सिर्फ उस शृंगार में अपने प्रभु को ही निहार पा रहा था और रही बात भगवान को प्रसन्न करने की; तो मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भगवान के लिए यदि सच्ची प्रीत हो तो जल-पुष्पादि से भी भगवान को प्रसन्न किया जा सकता है। भगवान की पूजा मात्र स्वर्ण-पुष्प और आभूषणों से ही होती हो, ऐसी बात नहीं है और न ही इसे मैं मानता हूँ। भगवान यदि स्वर्ण-पुष्प, हीरे-माणिक्य आदि से ही प्रसन्न होते तो हम गरीब लोग फिर भगवान की पूजा कैसे कर पाते? उन्हें कैसे प्रेम कर पाते? फिर मेरे प्रभु मुझ दीन पर अपनी कृपा कैसे कर पाते? मैं तो जल-पुष्पादि

चढ़ाकर प्रभु की कृपा की पल-पल, अनुभूति किया करता हूँ। इसलिए हे राजन्! आप धन का गर्व छोड़ दें। दूसरे लोग अपनी स्थिति के अनुसार पूजा करें, इसमें आपको भी प्रसन्न होना चाहिए।''

भक्त विष्णुदास की धर्मयुक्त बातों ने राजा चोल के हृदय को झकझोर कर रख दिया। उनका अभिमान चूर-चूर हो गया। आज एक सच्चे हरिभक्त के कारण उन्हें भगवान की भक्ति तथा उनकी पूजा का सच्चा मर्म समझ में आ गया था। राजा चोल उस गरीब विष्णुदास के समक्ष नतमस्तक हो गए और उस दिन से भावपूर्वक भगवान की भक्ति करने लगे; क्योंकि उन्हें भक्ति का सच्चा मर्म समझ में आ गया था। ❑

बात उन दिनों की है, जब डॉ. राम मनोहर लोहिया जर्मनी के हुम्बोल्ट विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पी-एच०डी० कर रहे थे। भारत में अँगरेजी शासन के खिलाफ गांधी जी के नेतृत्व में स्वाधीनता आंदोलन जोरों पर था। लोहिया जी के पिता हीरालाल जी भी स्वाधीनता आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे थे। पिता सरकार के अत्याचारों की सूचना पत्र द्वारा पुत्र को देते रहते थे, जिन्हें पढ़कर लोहिया जी के हृदय में अँगरेजी शासन के प्रति घृणा की भावना प्रबल हो उठती थी।

उसी समय जिनेवा में लीग ऑफ नेशंस का अधिवेशन होने जा रहा था, जिसमें भारत का प्रतिनिधित्व बीकानेर के महाराजा कर रहे थे। बहुत प्रयत्नों के बाद लोहिया जी ने इस अधिवेशन की दर्शक-दीर्घा में बैठने के दो पास हासिल कर लिए और अपने एक भारतीय मित्र के साथ दर्शक-दीर्घा में जा बैठे। बीकानेर के महाराजा का भाषण भारत में अँगरेजी शासन की प्रशंसा और चापलूसी से भरा हुआ था। भाषण के दौरान लोहिया जी और उनके मित्र ने बीकानेर के महाराजा के भाषण का पर्याप्त विरोध किया।

सभाध्यक्ष ने तुरंत उन्हें बाहर निकालने का आदेश दे दिया। अगले दिन के समाचारपत्र में लोहिया जी द्वारा सभापति को लिखा एक पत्र छपा, जिसमें उन्होंने भारत में हो रहे अँगरेजों के अत्याचार एवं भगत सिंह को दी गई फाँसी के बारे में विस्तार से चर्चा कर भारतीय प्रतिनिधि के भाषण की धज्जियाँ उड़ाईं थीं। जब किसी ने उनसे इस विषय में पूछा तो उनका जवाब था—''मेरा मकसद दुनिया के सामने भारत में चल रहे अन्यायपूर्ण अँगरेजी शासन की पोल खोलना था, जो मैंने कर दिखाया।'' उनके इस उल्लेखनीय प्रयास ने विश्व मंच पर भारत के स्वाधीन होने के प्रयासों को अत्यंत गति प्रदान की।

पर्व विशेष (गीता जयंती)

वेदों का सार है गीता

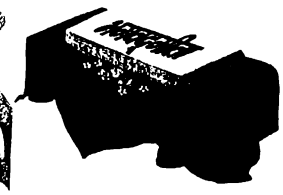

संसार में अनेक सद्ग्रंथ हैं। दर्शन, काव्य, महाकाव्य, धर्मग्रंथ, आगम-निगम आदि में ज्ञान-विज्ञान की संपदा व सौंदर्य विद्यमान हैं। इन सबके मध्य श्रीमद्भगवद्गीता का स्थान स्वयं में अद्वितीय है। गीता तो कई हैं, जो श्रीमद्भगवद्गीता के पश्चात स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा कही गईं, जैसे अपने परम मित्र उद्धव के अनुरोध पर 'उद्धवगीता', उनके सम्माननीय भीष्म के आग्रह पर कही गई 'भीष्मगीता' व सखा अर्जुन के पुनार्नुरोध रूप में 'अनुगीता' आदि।

स्थूलदृष्टि से सभी के वाचक श्रीकृष्ण ही हैं, किंतु वास्तव में सत्य का दूसरा पक्ष थोड़ा भिन्न है। अन्य स्थानों पर वे कृष्ण रूप, मानव रूप या अवतार रूप कृष्ण हैं, किंतु श्रीमद्भगवद्गीता में वे किसी अन्य भावरूप से परे भगवद्भाव में आरूढ़ योगेश्वर, सर्वेश्वर भगवान रूप में उपदेश दे रहे हैं, इसीलिए **स्वयं भगवान की अभिव्यक्ति का एकमात्र ग्रंथ है—श्रीमद्भगवद्गीता।** इसी महाग्रंथ के अवतरण को 'गीता जयंती' रूप से अभिहित किया जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता का केंद्रीय विषय निष्काम कर्म है। गीता में भगवान ने तो यहाँ तक कह दिया है कि योग कामना की पूर्ति और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए जो कामात्मा पुरुष वेदों में सृष्टि के लिए प्रतिपादित सकाम कर्मों का अनुष्ठान अपने हित साधन के लिए करते हैं, वे मूढ़ हैं; क्योंकि सकाम कर्मों का अनुष्ठान भोग और ऐश्वर्य तो दे सकता है, लेकिन इसे करने वाले को संसार चक्र से बाँधे रखता है। सकाम कर्मों के कारण बुद्धि निश्चयात्मक नहीं हो पाती और ऐसे कर्मों के पुण्य से जो स्वर्गादि दिव्य भोग और ऐश्वर्य मिलते हैं, वे पुण्य के क्षय होने पर जन्म-मरण का पुनः कारण बनते हैं।

गीता में भगवान की घोषणा है कि न तो वेद के अध्ययन से अथवा यज्ञों के संपादन से, न दान से, न यौगिक क्रियाओं से और न उग्र तपों से ही परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है; क्योंकि ये सब मन, इंद्रिय और शरीर की क्रिया द्वारा ही संपन्न किए जाते हैं। समाधानपरक होकर भगवान ने इस संदर्भ में यह भी कहा है कि जो पुरुष तात्त्विक रूप से जानकार वेदों में बतलाए गए अनुष्ठानों को करेगा, वही हृदय में अंतर्यामी रूप से स्थित मुझ परमात्मा को जान सकेगा। अतः हे अर्जुन! तुम तत्त्वदर्शी ज्ञानियों की शरण लेकर तत्त्व ज्ञान का उपदेश प्राप्त करो। महाभारत में महर्षि याज्ञवल्क्य ने राजा विश्वासु से गीताकार के समान ही कहा है—

साङ्गोपाङ्गानपि यदि यश्च वेदानधीयते।
वेदवेद्यं न जानीते वेदभारवहो हि सः॥

अर्थात सांगोपांग वेद पढ़कर भी जो वेदों द्वारा जानने योग्य परमात्मा को नहीं जानता, वह मूढ़ केवल वेदों का बोझ ढोने वाला है। वेदों के प्रति ऐसे ही भाव प्रकट करने वाली गीता के निम्नलिखित वचन भी विचारणीय हैं—

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥

2.42-43

त्रैगुण्यविषया वेदाः।

2.45

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते॥

6.44

एवं त्रयीधर्म मनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते॥

9.21

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

11.53

गीता के उपर्युक्त वचनों को कुछ विद्वान वेदों की आलोचना करते प्रतीत होते हैं। ये वचन वेदों की निंदा नहीं हैं, बल्कि उन कामात्मा पुरुषों को सावधान करने के लिए कहे गए हैं, जिन्होंने भोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए सकाम कर्मों को करना अपना स्वभाव बना लिया है। इन वचनों से भगवान ने वेदों में वर्णित सकाम भाव वाले कर्मकांडों

के स्थान पर आसक्तिरहित निष्काम कर्मों का पक्ष अवश्य लिया है, लेकिन गीता में विभिन्न स्थलों पर वेदों के लिए प्रशंसात्मक अनेक वचन भी मिलते हैं। गीता में भगवान कहते हैं कि जानने योग्य पवित्र ऊँकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद मैं ही हूँ। अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए भी भगवान ने स्वीकार किया है कि वेदों में मैं सामवेद हूँ। अपनी श्रेष्ठता का प्रमाण भगवान ने वेदों से ही दिया है, जब उन्होंने कहा कि—

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

अर्थात वेद में भी मैं पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। महात्मा गांधी ने इस गुत्थी को बहुत सुंदर ढंग से सुलझाया है। वे कहते हैं कि पुरुष का चित्त कुकर्मों के कारण मलिन हो जाता है। चित्त से मलों को हटाने के लिए सत्कर्मरूपी वैदिक कर्मकांडों के अनुष्ठान का प्रावधान हमें उपलब्ध कराया गया है। शास्त्रोक्त कर्म चित्त की शुद्धि करके उसे निर्मल और शांत बना देते हैं। यह अनुभव दुर्लभ नहीं है कि अशुद्धचेता साधक को श्रवण करने मात्र से ब्रह्मविद्या फलवती नहीं होती। ज्ञानप्राप्ति के लिए वेदोक्त सकाम कर्म करके पहले चित्त की शुद्धि की आवश्यकता है।

परमाचार्य श्री रामानुज ने अपने श्रीभाष्य में **विहितत्वाच्चा श्रमकर्मापि** तथा **सहकारित्वेन च** सूत्रों में आश्रम, कर्मों के पालन को ब्रह्मविद्या की प्राप्ति में साधन माना है। मुंडकोपनिषद् के अनुसार भी परमात्मा से ही वेदों की ऋचाएँ, साम, यजुः, दीक्षा सभी यज्ञ, क्रतु, दक्षिणा, संवत्सर, यजमान, लोक और जहाँ तक चंद्रमा पवित्र करता है और सूर्य तपता है, वे लोक उत्पन्न हुए हैं। वेद और उनमें प्रतिपादित कर्मों का विधान परमात्मा द्वारा ही बनाए गए हैं। वेदों में सकाम के साथ-साथ निष्काम कर्मों की भी चर्चा है। 'वेद' शब्द उस शुद्ध ज्ञान का द्योतक है, जो परमात्मा से प्रकट हुआ है। वेद साक्षात् भगवद्रूप ही माने जाते हैं और शास्त्र भगवान को भी वेदरूप बतलाते हैं। **यस्य निश्श्वसितं वेदाः** अर्थात वेद भगवान के निःश्वास हैं। वेदों में सकाम भाव वाले कर्मकांड के मंत्रों की संख्या अस्सी हजार है; जबकि सोलह हजार मंत्र उपासनाकांड के और चार हजार निष्काम कर्म वाले ज्ञानकांड के हैं।

गीता के समान निष्काम कर्म और अनासक्ति का उपदेश देने वाले अनेक वचन वेदों में मिलते हैं—**तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन तपसानाशकेन॥** अर्थात आत्मा को ब्राह्मण लोग वेदों के स्वाध्याय से तथा यज्ञ, ज्ञान और निष्काम तप के द्वारा जानने की इच्छा रखते हैं। श्रुति के इस वचन में 'अनाशकेन' शब्द का अर्थ है कामनारहित। भगवान ने गीता में वेदों के वचनों को ही दोहराया है, अतः गीता के किसी वचन को वेद निंदा कहना सर्वथा अनुपयुक्त है। गीता को वेदों का सार कहा जा सकता है। वेदों का संक्षिप्तीकरण एवं सार ही गीता है। गीता में निष्काम कर्म का प्रतिपादन है। गीता के ज्ञान में इतनी व्यापकता है कि इसे जिस रूप में धारण करना चाहें, वहीं नवीन ज्ञान का उदय होता है। ❑

हम अपने परिजनों से लड़ते-झगड़ते भी रहे हैं और अधिक काम करने के लिए उन्हें भला-बुरा भी कहते रहते हैं, पर यह सब इस विश्वास के कारण ही करते हैं कि उनमें पूर्वजन्मों के महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक संस्कार विद्यमान हैं। आज वे प्रसुप्त पड़े हैं, पर उन्हें झकझोरा जाए तो जगाया जा सकना असंभव नहीं है। कड़ुए-मीठे शब्दों से हम अक्सर अपने परिवार को इसलिए झकझोरते रहते हैं कि वे अपनी अंतःस्थिति और गरिमा के अनुरूप कुछ अधिक साहसपूर्ण कदम उठा सकने में समर्थ हो सकें।

— परमपूज्य गुरुदेव

आरामपसंदगी बना रही है हमें बीमार

बहुत सुख-सुविधाएँ भी हमारे स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक हो सकती हैं, जबकि वहीं कम सुख-सुविधाएँ स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायक हो सकती हैं। यही बात विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक सर्वे की रिपोर्ट कुछ इस तरह से कहती है कि पूरी दुनिया में आरामपसंदगी यों पसरी हुई है कि वह हमारी सेहत पर भारी पड़ने लगी है और इस पर भी चिंता इस बात की है कि इस मामले में भारतीय बहुत आगे हैं।

वर्तमान युग मशीनीकरण का है। पहले हर कार्य के लिए हाथों का इस्तेमाल किया जाता था, जिसमें मेहनत लगती थी, पसीना बहता था। काम तो अब भी वही किया जाता है, लेकिन अब उसमें मेहनत कम लगती है, समय कम लगता है और पसीना भी कम बहता है। काम करने के ये तरीके भले ही हमारी सुविधा के लिए उपयुक्त हों और इनके माध्यम से कम समय में हमारा बहुत सारा कार्य हो जाता हो, लेकिन इनका दुष्प्रभाव यह है कि इनके कारण व्यक्ति का स्वास्थ्य बुरी तरह से प्रभावित हो रहा है।

पहले घर के हर कार्य घर की महिलाओं एवं अन्य सदस्यों द्वारा हाथों से किए जाते थे, जैसे—आटा पीसना, मसाले पीसना, अनाज साफ करना, कपड़े धोना, खाना बनाना इत्यादि। जैसे—पहले घर-घर में सिलबट्टा व पत्थर की चक्की होती थी, जिनसे चटनी, मसाले व आटा इत्यादि पीस लिए जाते थे, लेकिन आज के समय में आटा व मसाले या तो चक्की में पिसाए जाते हैं या फिर इन्हें बना-बनाया ही खरीद लिया जाता है। इसके साथ ही चटनी आदि के लिए मिक्सी का प्रयोग किया जाता है, जिससे रसोई का कार्य बहुत शीघ्र होता है और समय की भी बचत होती है, परंतु इससे मेहनत करने की आदत चली जाती है।

पहले अनाज; जैसे चावल तथा दाल साफ करने का कार्य अपने हाथों से किया जाता था, लेकिन आज कल साफ चावल-दाल बाजार में उपलब्ध होते हैं, जिन्हें लोग आसानी से खरीद लेते हैं। पहले लोग अपने कपड़े हाथों से धोते थे, लेकिन आज या तो कपड़े मशीन में धोए जाते हैं या फिर उन्हें धोने व प्रेस करने के लिए लॉण्ड्री में कपड़े धोने वालों को दे दिया जाता है।

पहले लोग या तो पैदल या फिर साइकिल से कहीं आते-जाते थे। बहुत कम ही मोटरगाड़ियों का इस्तेमाल होता था, लेकिन आज कहीं भी आने-जाने के लिए बाइक, ऑटो, कार, ट्रेन व प्लेन आदि का बहुत इस्तेमाल होता है; क्योंकि इनके माध्यम से कई किलोमीटर की लंबी-लंबी दूरियाँ भी आसानी से कम समय में तय कर ली जाती हैं।

पहले किसी भी संदेश को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने में बहुत समय लग जाता था, लेकिन आजकल कोई भी संदेश मात्र कुछ सेकेण्डों में ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक या एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक सरलता से पहुँच जाता है।

इस तरह पहले के समय में और आज के समय में जमीन-आसमान का अंतर है, लेकिन इतनी सुविधाओं के रहते हुए भी हमारे स्वास्थ्य में वृद्धि होने के बजाय, स्वास्थ्य की दृष्टि से लगातार गिरावट ही देखने को मिल रही है।

आज हमारे जीवन में सक्रियता भले हो, लेकिन आरामपसंदगी भी बहुत है। मनोचिकित्सकों का यह कहना है कि सक्रियता का केवल यह मतलब नहीं कि आप बस, दिमागी तौर पर लगातार सक्रिय रहें। सक्रियता वही फलदायी है, जो आपको पसंद हो, सुख देती हो। अच्छी सेहत के लिए पहली शर्त यह है कि हम अपने लिए ऐसी दिनचर्या निर्धारित करें, जिससे हमें अपने जीवन में लगातार मिलने वाले तनाव से थोड़ा छुटकारा मिले अन्यथा हमारी जीवनशैली ही हमें बीमारियों का तोहफा दे देगी।

अच्छी सेहत के लिए हमें पौष्टिक भोजन, व्यायाम, शारीरिक व मानसिक श्रम, आराम आदि आवश्यक हैं, लेकिन इसके साथ-साथ हमारे परिवेश में स्वच्छता व साफ-सफाई भी जरूरी हैं और इसके लिए हमें स्वयं पहल करनी होगी; क्योंकि बीमारियाँ स्वयं नहीं आतीं,

बल्कि हम उन्हें आने का अवसर देते हैं और ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित करते हैं कि उन्हें आने का आमंत्रण मिल सके, इसलिए बीमारियों के पनपने के जो भी कारण हैं, उन्हें हमें स्वयं दूर करना होगा और इसके लिए उचित प्रयास भी करना होगा।

आज लोगों की जिंदगी इतनी तेजी से आगे बढ़ रही है कि इसके साथ कदम-से-कदम मिलाने के लिए मशीन से काम लेना हमारी मजबूरी बन चुकी है। हम इसे पूरी तरह से आरामपसंदगी नहीं कह सकते; क्योंकि इसमें हमारी मरजी नहीं चलती, लेकिन फिर भी हमने अपने जीवन में जो कृत्रिमता अपनायी है वह हमारे लिए बिलकुल भी फायदेमंद नहीं है, जैसे ताजी हवा का सेवन करने के बजाय घरों में ए.सी. में रहने की आदत डालना, घर में हरियाली बढ़ाने के बजाय प्लास्टिक के फूलों व पौधों से घर की सजावट आदि करने से हमें वो लाभ नहीं मिल पाता, जो प्रकृति के सान्निध्य में मिलता है।

हमारे जीवन में सुख-सुविधाएँ तेजी से बढ़ी हैं तो हमारे मन का स्वाभाविक शत्रु आलस्य और भी तेजी से फला-फूला है। इस सबके कारण स्थिति यह है कि आज 135 करोड़ की आबादी में 42 करोड़ लोग इसकी चपेट में आकर बीमार हो रहे हैं। हाल ही में विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक सर्वे के अनुसार—काम करने में आलस्य करने और पर्याप्त श्रम न करने के कारण हम भारतीय लोग डायबिटीज यानी मधुमेह के मामले में पहले नंबर पर और बच्चों के मोटापे के मामले में दूसरे नंबर पर आ गए हैं। लोगों को फिट होने का ऐसा चस्का चढ़ा है कि घर-घर में ट्रेडमिल (एक ही स्थान पर दौड़ने के लिए मशीन) आ गई हैं, लेकिन तब भी डायबिटीज, थायरॉयड, एसिडिटी या फिर पथरी समेत ऐसी कई बीमारियाँ आज हर घर की मेहमान बनती जा रही हैं।

सेहत के मामले में महिलाओं की स्थिति पुरुषों से भी कमजोर है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के हाल में ही हुए एक रिसर्च के अनुसार—भारतीय महिलाएँ भारतीय पुरुषों से कम वॉक करती हैं, यानी कम पैदल चलती हैं। आँकड़ों के मुताबिक महिलाएँ दिनभर में लभगग 3,684 कदम चलती हैं; जबकि पुरुष लगभग 4,606 कदम चलते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन रोजाना पाँच मील अर्थात दस हजार कदम चलना जरूरी बताता है, लेकिन आधुनिक जीवनशैली में यह सबके बस की बात नहीं है। खासतौर से उन लोगों के लिए यह बिलकुल संभव नहीं है, जो दिनभर दफ्तर में बैठकर काम करते हैं।

चिकित्सकों के अनुसार—इस बारे में डरने के बजाय थोड़ा सजग होने की जरूरत है; क्योंकि जब आप अपनी पसंद का खाना खाते हैं तो आपको कैलोरी को बर्न करने की अर्थात अनावश्यक ऊर्जा का क्षरण करने की आदत भी डालनी होगी और इसके लिए कार पर कहीं जाने की आदत छोड़कर साइकिल या पैदल चलने का रास्ता चुनना बेहतर होगा।

हमें यह याद रखना चाहिए कि जीवनशैली से जुड़ी बीमारियों में काफी हद तक मन का भी हाथ है। यदि हम फिट रहने की कोशिश करते हैं और तनाव भी ले रहे हैं तो हमारे द्वारा की जाने वाली गतिविधियों या अच्छी खुराक आदि को हमारा शरीर सहजता से स्वीकार नहीं कर पाता।

हम क्या करते हैं, इसका महत्त्व कम है; किंतु हम किस भाव से करते हैं, इसका बहुत महत्त्व है।

तनाव में व्यक्ति अक्सर गलत आदतों यानी नशे आदि की तरफ चला जाता है और इससे बीमारियों को हमारे जीवन में प्रवेश करने का मार्ग मिल जाता है, इसलिए हमें सचेत रहने की जरूरत है। आज के समय में यदि हमें स्वस्थ रहना है तो हमें समय के साथ संतुलन बनाने की जरूरत है। इसके लिए अपने कार्यों के बीच में ही थोड़ा आसन, व्यायाम, प्राणायाम आदि करना जरूरी है—ये सब हमारी सेहत को अच्छा बनाए रखने में सहायक हैं।

देखा जाए तो हमारे शरीर में पहले से ही एक व्यवस्था मौजूद है जिसे हम जैविक घड़ी कह सकते हैं, लेकिन हम उस व्यवस्था को खारिज करके उस पर अपनी मरजी थोपने के आदी हो चुके हैं और यहीं से शुरुआत होती है—हमारी अधिकांश बीमारियों की। सच्चाई यह है कि आज हम शरीर की जैविक घड़ी के बजाय सोने-जागने, खाने-पीने के तरीके खुद ही तय करते हैं। स्वस्थ रहने के लिए यदि हम केवल अपने शरीर की जैविक घड़ी के अनुसार अपनी दिनचर्या तय करें और उसके अनुसार कार्य करें तो भी हम पहले से भी ज्यादा स्वस्थ रह सकते हैं। ❑

मानुष तन अनमोल है

मानव जीवन बड़ा ही अनमोल है, अमूल्य है, अनुपम है, अद्वितीय है, अतुलनीय है। मनुष्य शरीर देवदुर्लभ है। इसे पाने को देवता भी तरसते हैं। मानव जीवन की गरिमा और महिमा सर्वसिद्ध है, सर्वविदित है। विभिन्न धर्मग्रंथों में भी मानव जीवन की महान महिमा का वर्णन है, पर यदि मानव जीवन सचमुच महान है, अमूल्य है, अनुपम है तो मानव जीवन पाकर भी लोग क्यों हताश हैं, निराश हैं, उदास हैं, दुःखी हैं ?

ऐसा अनुपम जीवन पाकर भी लोग क्यों आनंदित, उल्लसित व आह्लादित नहीं हैं ? इस प्रश्न का सही समाधान पाए बिना हम निश्चित ही चिंतित, विचलित और पीड़ित होते हैं। इन प्रश्नों का सही समाधान पाना भी उतना ही अभीष्ट है, आवश्यक है, अनिवार्य है। अस्तु इन प्रश्नों के सही समाधान को पाने के लिए हम एक बहुत ही प्रेरक व मधुर कहानी में प्रवेश करते हैं।

एक गृहस्थ के घर में बहुत दिनों से एक वीणा रखी हुई थी। यों ही बेजान, बेकार व बिना किसी उपयोग के शायद उस घर के लोग यह भूल गए थे कि उस वीणा का उपयोग कैसे करना है। हाँ! पीढ़ियों पहले उस घर में अवश्य ही कोई ऐसे रहे होंगे, जिन्हें वीणा बजाना आता रहा होगा और इसलिए शौकिया तौर पर उन्होंने उस वीणा को अपने घर में रखा होगा, पर अब जो लोग उस घर में रह रहे थे उनके लिए वह वीणा महज एक बेकार की वस्तु थी, जिसका कोई उपयोग न था।

अब तो कभी कोई बच्चा भूल से भी उस वीणा के तार को छेड़ देता तो घर के लोग नाराज हो जाते। कभी हवा के झोंकों से भी यदि वीणा के तार बज उठते तो भी लोग नाराज हो जाते। कभी कोई बिल्ली छलाँग लगाकर उस वीणा को गिरा देती तो आधी रात में उसके तार झनझना जाते, उससे घर के लोगों की नींद टूट जाती और लोग नाराज हो जाते। इस प्रकार वह वीणा एक उपद्रव का कारण हो गई, शोर-शराबे का कारण हो गई, अशांति उत्पन्न करने का कारण हो गई। अंततः एक दिन घर के लोगों ने तय किया कि इस वीणा को फेंक दिया जाए; क्योंकि यह जगह घेरती है, शोर-शराबा करती है, अशांति फैलाती है और शांति में बाधा डालती है। उस घर के लोग उस वीणा को घर के बाहर कूड़े में फेंक आए।

घर के लोग उस वीणा को फेंककर अभी घर भी नहीं लौटे थे कि उन्हें पीछे से कुछ मधुर स्वर सुनाई पड़े। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो पाया कि उनके द्वारा कूड़े में फेंकी गई उस वीणा को उस मार्ग से जा रहे एक फकीर ने उठा लिया था। उस फकीर ने ही उस वीणा के तारों को छेड़ा। वे लोग जो उस वीणा को बेकार समझकर कूड़े में फेंक चुके थे, उस वीणा के स्वर सुनकर ठिठक गए, ठहर गए और कुतूहलवश वापस लौट गए। उस रास्ते से होकर जो लोग भी गुजर रहे थे, वे सभी वीणा के स्वर को सुनकर ठिठक गए, ठहर गए। घरों में जो लोग थे, वे भी बाहर आ गए। वहाँ भीड़ लग गई। वह फकीर मंत्रमुग्ध हो उस वीणा को बजा रहा था।

जब उस घर के लोगों को वीणा का स्वर और संगीत मालूम पड़ा तो जैसे ही उस फकीर ने बजाना बंद किया, तभी उन सभी ने उस फकीर से कहा—"यह वीणा हमें लौटा दो। यह वीणा हमारी है।" उस फकीर ने कहा—"वीणा उसकी है; क्योंकि वह उसे बजाना जानता है।" अब वे आपस में लड़ने-झगड़ने लगे। उन्होंने फकीर से फिर कहा—"हमें वीणा वापस चाहिए।" उस फकीर ने कहा—"इसे लेकर तुम क्या करोगे ? यह बेकार पड़ी रहेगी, तुम्हारे घर में जगह घेरेगी। फिर कोई बच्चा उसके तारों को छेड़ेगा और घर की शांति भंग होगी। वीणा घर की शांति भंग भी कर सकती है, यदि इसे सही से बजाना न आता हो। वीणा घर की शांति को गहरा भी कर सकती है, यदि इसे बजाना आता हो। सब कुछ बजाने वाले पर निर्भर करता है।"

आखिरकार बहुत आग्रह करने पर वह फकीर उस व्यक्ति को वीणा वापस करने को तैयार हो गया, पर वह

व्यक्ति बोला—''मुझे सिर्फ वीणा नहीं, बल्कि आपसे उसे बजाने के नियम भी सीखने हैं।'' उस व्यक्ति के आग्रह पर अंततः वह फकीर उसके घर आकर उसे वीणा बजाना सिखाने लगा। कुछ दिनों के अभ्यास से ही वह व्यक्ति वीणा बजाना सीख गया।

वह फकीर वहाँ से चला गया, पर अब तो वह व्यक्ति नित्य वीणा बजाया करता। धीरे-धीरे उसका अभ्यास गहरे-से-गहरा होता गया। वीणा के तार छेड़ते ही उसके अंदर एक आनंददायी हलचल शुरू हो जाती। उसके हृदय के तार भी झंकृत होने लगे। उसका मन एकाग्र होने लगा और अब तो वीणा की स्वर लहरियों के साथ ही उसकी आत्मा में भी आनंद की लहरें उठने लगीं और उसे असीम-आत्मिक आनंद की अनुभूति होने लगी। जिस वीणा के स्वर से कभी उस घर की शांति भंग हो जाया करती थी, उस वीणा के स्वर सुनते ही अब उस घर के लोगों के मन में भी असीम शांति उतर आती थी। अब तो जिस दिन वीणा के स्वर सुनाई नहीं पड़ते, उस दिन घर के सभी लोग परेशान हो जाया करते, व्याकुल हो जाया करते।

इस कहानी की प्रेरणा यही है कि यदि जीवन, जीवन की तरह जिया जाए तो उसमें आनंद-ही-आनंद है, शांति-ही-शांति है, पर यदि जीवन जीने का तरीका सही न हो तो जीवन में दुःख-ही-दुःख है, अशांति-ही-अशांति है। यह देवदुर्लभ मनुष्य जीवन भी एक तरह की वीणा है, पर फिर भी हम उदास हैं, हताश हैं, निराश हैं; क्योंकि हमें इसे बजाना नहीं आता। हमें जीवन जीना नहीं आता, इसलिए तो इतना अनमोल मानुष तन पाकर भी हमारे जीवन में इतनी उदासी है, इतना दुःख है, इतना क्लेश है, इतनी पीड़ा है।

इसीलिए जगत् में इतना अँधेरा है, इतनी हिंसा है, इतनी घृणा है, इतनी नफरत है, इतना वैमनस्य है, इतनी शत्रुता है, इतनी कटुता है। इसलिए जगत् में इतना युद्ध है। जिस जीवन से संगीत की मधुर व आनंददायी लहरें उठ सकती थीं, उस जीवन से काम-वासना का धुआँ उठ रहा है। जिस जीवन से प्रेम की ऊँची-ऊँची लहरें उठ सकती थीं, उस जीवन से घृणा, नफरत, शत्रुता व कटुता की चिनगारियाँ निकल रही हैं। जिस जीवन में प्रेम, पवित्रता व करुणा का अथाह सागर उमड़ सकता था, वह जीवन आज सूखा ही पड़ा है।

जिस मनुष्य शरीर में रहकर परम शांति की अनुभूति हो सकती थी, उस जीवन में संस्कारों का व संसार का शोर-शराबा अपने चरम पर है, शीर्ष पर है, उफान पर है और इसने हमारे सुख-चैन को ही छीन लिया है तो निश्चित ही हमसे भूल यह हो रही है कि हम जीवनरूपी वीणा को बजाना ही नहीं जानते। हमारा जोर वीणा को बजाने के नियम जानने व समझने पर नहीं; हमारा जोर वीणा को बजाने पर नहीं, उसे मात्र सजाने-सँवारने पर है। हमारा जोर देहभाव से उठकर आत्मभाव में स्थिर होने पर नहीं, बल्कि हमारा जोर तो इंद्रियों की दासता में डूबे रहने पर है, उनसे बाहर निकल आने पर नहीं। हमारा जोर मन की लहरों को मारने-मिटाने पर नहीं, बल्कि उन्हें आश्रय और प्रश्रय देने पर है। हमारा जोर चित्त को संस्कारों से मुक्त करने पर नहीं, वरन उसे नित नए कर्म-संस्कारों से भरने पर है। हमारा जोर ध्यान की गहन गहराई में उतरकर बुद्धत्व की प्राप्ति पर नहीं, वरन नित्य भौतिकता की चकाचौंध में और भी अधिक गहरे में डूबते जाने पर है। हमारा जोर आत्मज्ञान व ब्रह्मज्ञान पाने पर नहीं, वरन अज्ञानता के प्रवाह में बहते जाने पर है।

जो जप, तप, योग, ध्यान आदि के माध्यम से इस अज्ञानता के प्रवाह से बाहर निकल आए, देहभाव से निकलकर आत्मभाव में स्थिर हो गए—वे लोग इसी मानव शरीर में रहते हुए बुद्ध बन गए, विवेकानंद बन गए, आचार्य शंकर बन गए अस्तु यह अवसर, यह मार्ग हमारे लिए भी सुलभ है। अगर चाहें तो हम भी उस परम स्थिति को, आनंद की, परमानंद की, ब्रह्मानंद की स्थिति को प्राप्त हो सकते हैं। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी के शब्दों में कहें तो यही जीवन देवता की साधना है, आराधना है। इंद्रिय संयम, विचार संयम, समय संयम व अर्थ संयम की साधना से हम अपने स्वयं के जीवन को ही देवता बना सकते हैं और मनचाहा वरदान प्राप्त कर सकते हैं।

यदि हम जीवन की वीणा को बजाना सचमुच सीख गए तो जिस जीवन से अब तक वासना की दुर्गंध आती रही, उसी जीवन से ही समाधि की सुगंध आने लग सकती है। उस जीवन में ही समाधि के फूल खिल सकते हैं और पूरा जीवन उसकी ब्राह्मी खुशबू से महक सकता है। जिस जीवन में अब तक दुःख, उदासी, निराशा और अशांति का साम्राज्य रहा है, उस जीवन में ही ध्यान की गहन गहराई में उतर आने पर ऐसी परम शांति प्राप्त हो सकेगी, जो कभी भी खंडित न हो सकेगी। जिसे चलते-फिरते, सोते-जागते,

उठते-बैठते, खाते-पीते, हर समय में, हर स्थिति में महसूस किया जा सकेगा। हमारे जीवन में भी सर्वदा वही परम शांति हो सकेगी, जैसी बुद्धपुरुषों के जीवन में होती रही है। हमारे भीतर में भी वही परम आनंद उतर सकेगा, जो कि बुद्धपुरुषों के जीवन में उतरा करता है।

जिस मनुष्य शरीर को पाकर हम इतनी दुर्लभ चीजें पा सकते हैं; उस शरीर को पाकर भी हमारे जीवन का दु:खों से भरा होना हमारे लिए कितना लज्जाजनक है, कितना अफसोसजनक है, कितना अशोभनीय है। मनुष्य शरीर तो मोक्ष का साधन है। इस साधन को पाकर भी यदि हम साधना नहीं कर सके, अपनी आत्मा की मुक्ति के लिए पुरुषार्थ नहीं कर सके तो शास्त्रीय दृष्टि से, आध्यात्मिक दृष्टि से यह हमारे लिए न सिर्फ निंदनीय है बल्कि आत्मघाती भी है। तभी तो आचार्य शंकर ने विवेक चूड़ामणि में कहा है—

लब्ध्वा कथञ्चिन्नरजन्म दुर्लभं
तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम्।
य: स्वात्ममुक्तौ न यतेत मूढधी:
स ह्यात्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात्॥ 4॥
इत: को न्वस्ति मूढात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति।
दुर्लभं मानुषं देहं प्राप्य तत्रापि पौरुषम्॥ 5॥

अर्थात—किसी प्रकार इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर और उसमें भी, जिसमें श्रुति के सिद्धांत का ज्ञान होता है, जो मूढ़बुद्धि अपनी आत्मा की मुक्ति के लिए प्रयत्न नहीं करता, वह निश्चय ही आत्मघाती है। वह असत् में आस्था रखने के कारण अपने को नष्ट करता है। दुर्लभ मनुष्य देह को पाकर जो स्वार्थ-साधन में प्रमाद करता है, उससे अधिक मूढ़ और कौन होगा?

वहीं भगवान श्रीराम रामचरितमानस में कहते हैं—

एहि तन कर फल बिषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं।
पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो।
सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

अर्थात—भगवान श्रीराम कह रहे हैं कि हे भाई! इस शरीर के प्राप्त होने का फल विषय-भोग नहीं है। इस जगत् के भोगों की तो बात ही क्या, स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अंत में दु:ख देने वाला है। अत: जो लोग मनुष्य शरीर पाकर विषयों में मन लगा लेते हैं, वे मूर्ख अमृत को बदलकर विष ले लेते हैं। यह मनुष्य शरीर तो भवसागर से तारने के लिए बेड़ा (जहाज) है। मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। सद्गुरु इस मजबूत जहाज के कर्णधार (खेने वाले) हैं। इस प्रकार दुर्लभ साधन सुलभ होकर उसे प्राप्त हो गए हैं। जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागर से न तरे, वह कृतघ्न और मंदबुद्धि है और आत्महत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है।

अस्तु यदि किसी ब्रह्मज्ञानी गुरु की शरण में रहकर अपने जीवन की वीणा को हम बजाना सीख सकें तो यह हमारे जीवन का अहोभाग्य है, सौभाग्य है। फिर हमारे जीवन में दु:ख नहीं, वरन आनंद-ही-आनंद है। फिर हमारे जीवन में कोई बंधन नहीं, वरन मुक्ति-ही-मुक्ति है। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006
Yes Bank	Dampier Nagar, Mathura	YESB0000072	007263400000143

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान है ध्यान

ध्यान में संपूर्ण आध्यात्मिक रहस्य समाये हुए हैं, फिर भी इसका अनुभव कम ही लोग कर पाते हैं और इसका कारण यह है कि ध्यान के विषय में अनेक भ्रांतियाँ प्रचलित हैं। कतिपय लोग ध्यान को महज एकाग्रता भर समझते हैं। कुछ लोगों के लिए ध्यान केवल मानसिक व्यायाम भर है। ध्यान को एकाग्रता समझने वाले लोग जिस किसी तरह से मानसिक चेतना को एक बिंदु पर इकट्ठा करने की कोशिश करते हैं, हालाँकि उनके इस प्रयास से परामानसिक चेतना के द्वार नहीं खुलते। उन्हें अंतर्जगत में प्रवेश नहीं मिलता। वे तो बस, बाहरी उलझनों में भटकते अथवा मानसिक द्वंद्वों में अटकते रहते हैं।

जिस तरह दवा शरीर से बीमारियों को दूर करती है, उसी तरह ध्यान अंतस् को स्वस्थ करता है। ध्यान हमारी जागरूकता और हृदयसहित सभी इंद्रियों की संवेदनशीलता को तेजी से बढ़ाता है। ध्यान हमारी भावनाओं में वृद्धि करता है और सकारात्मकता को भी बढ़ाता है। यही सकारात्मकता और भावनाएँ हमें ईश्वर के निकट ले जाती हैं।

ध्यान का मतलब कुछ करना नहीं है। ध्यान है—पूर्ण विश्राम की अवस्था में साँसों के प्रति चेतन होना। पूर्ण का तात्पर्य है शरीर, मन और हृदय यानी क्रिया, सोच-विचार और भावनाओं, तीनों की विश्राम की अवस्था। ध्यान प्रयास से नहीं आता है। जब भी हम ध्यान में उतरने का प्रयास करेंगे, खलल पड़ेगा। हाँ! जैसे ही हम अपने को पूरी तरह छोड़ देंगे, हमें पता भी नहीं चलेगा कि हम कब ध्यान में उतर गए।

हमारी क्रियाओं के तीन तल हैं। एक शरीर का तल है, जहाँ हम कुछ कर्म करते हैं। दूसरा तल मन का है, जहाँ हम सोचते-विचारते हैं। तीसरा तल है—हमारे हृदय का, भाव के जगत का, जहाँ हम भावनाओं का अनुभव करते हैं। इन तीनों के भीतर एक चौथा तल और है। वह किसी कर्म का तल नहीं है। वहाँ सिर्फ प्राण है, सिर्फ चेतना है, जहाँ जब हम शरीर, मन या हृदय से कुछ भी नहीं कर रहे होते हैं।

हम समझते हैं कि अगर हम बीमार नहीं हैं तो हम स्वस्थ हैं, लेकिन बीमार न होने का मतलब स्वस्थ होना नहीं है। कुछ और भी चाहिए। ध्यान वही चीज है। यह हमारी आध्यात्मिक समस्यायों का समाधान है। ध्यान हमें उचित परिप्रेक्ष्य में घटनाओं को परखने की दृष्टि देता है। ध्यानी से मिलकर हमको उसकी आंतरिक खुशी और शांति का स्पष्ट अनुभव होगा। जो ध्यान करेगा, उसमें अतींद्रिय क्षमता अवश्य विकसित होगी और यह उसे जीवन का परम उद्देश्य खोजने के प्रति चेतन बनाए रखती है। ध्यान से प्राप्त शून्यता उसमें नई सूझ-बूझ भरती है। इस बात की प्रबल संभावना होती है कि ध्यानी स्वतंत्र व आत्मनिर्भर विचारों का स्वामी होगा। उसकी वृत्ति आविष्कारक, सृजनात्मक, कलात्मक व साहित्यिक होगी।

ध्यान स्व-यथार्थ बोध यानी सेल्फ-एक्चुअलाइजेशन में मददगार है। यह सेवाकार्य में हमारी रुचि बढ़ाता है। आत्मज्ञान की संभावना का द्वार ध्यान से ही खुलता है और इसके द्वारा न सिर्फ खुद के बारे में, बल्कि दूसरों के विषय में भी गहरी समझ पैदा होती है। यह ध्यान ही है, जिससे तन-मन और चेतना के बीच के सामंजस्य की अखंडता को समझना और उसे साधना संभव होता है। इससे आध्यात्मिक विश्राम की गहराई में डुबकी लगती है और व्यक्ति विकाररूपी शत्रुओं से मुक्त होने लगता है व उसमें दूसरों की उन्नति के प्रति सहर्ष स्वीकार का भाव बनता है।

ध्यान करने वाला जो पहले था, वही नहीं रह जाता। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण बदल जाता है। उसके भीतर मैत्रीभाव और क्षमाभाव भी आता है। यह उसे ध्यान की उच्चतर अवस्था में ले जाने अर्थात समाधि में उतारने में सहायक होता है, जिससे व्यक्ति का परमात्मा के साथ गहरा संबंध स्थापित होता है। वास्तविक योग यही है। ध्यानी अंतर्मुखी जरूर होता है, मगर वह गंभीर नहीं होता। इसके विपरीत वह तो जीवन की लीला को खेल की तरह लेता है। यही प्रवृत्ति उसे वर्तमान में जीने में मदद करती है, जिससे

द्रष्टाभाव विकसित होता है और व्यक्ति के लिए स्वयं को घटना का साक्षीमात्र समझना आसान होता है। सत्ता और अहंकार से परे आत्मचैतन्य की खोज में तल्लीन होने का यह परम सूत्र है।

जो भी ध्यानी होगा, वह अकारण ही संतोष, आनंद और मस्ती में दिखेगा। कारण बिलकुल सीधा है—उसने दूसरों से तुलना करना छोड़ दिया है। जैसे ही आप अपने आप से परिचित होते हैं, आपकी समझ में आ जाता है कि अन्य लोग भी आपकी ही तरह अद्वितीय हैं। फिर तुलना कैसी? जागरण की यह अवस्था सबके प्रति सहज सम्मान जगाती है। हमारे शरीर में ऊर्जा के सात तल हैं, जिनमें सबसे नीचे का तल मूलाधार कहलाता है और सबसे ऊपर का तल सहस्रार। प्रकृति केवल मूलाधार चक्र को सक्रिय करती है। बाकी चक्रों को सक्रिय करने के लिए व्यक्ति को प्रयास करना होता है। यदि व्यक्ति प्रयास नहीं करता तो उसकी ऊर्जा आजीवन मूलाधार चक्र पर ही रह जाती है और वह मूलाधारचक्र से ही विदा हो जाता है। चूँकि हमारी सारी ऊर्जा मूलाधारचक्र पर जमी रहती है या यों कहें कि कुंडली मारकर बैठी रहती है, इसलिए वहाँ से ऊर्जा के ऊपर उठने को कुंडलिनी जागरण कहते हैं। ध्यान की पूरी प्रक्रिया इन सातों चक्रों को सक्रिय करने का प्रयास है; क्योंकि आंतरिक जीवन की समृद्धि इसी से संभव है। कुंडलिनी जागरण होते ही जीवन-ऊर्जा का अनुभव सघन होने लगता है।

ध्यानी का आज्ञाचक्र (त्रिनेत्र) सक्रिय होता है, जिससे उसके लिए आत्मस्वामित्व का अनुभव कर पाना आसान होता है। आज्ञाचक्र की सक्रियता से अतींद्रिय ज्ञान के द्वार खुलते हैं और व्यक्ति पहली बार उस शक्ति से परिचित होता है, जिसे वास्तविक अर्थ में चमत्कार कहा जा सकता है। उसकी जिंदगी प्रेम, श्रद्धा, स्नेह, करुणा जैसी श्रेष्ठ भावनाओं से ओत-प्रोत हो जाती है। ऐसा व्यक्ति जब भी विदा होगा, गहन शांति और स्वीकार्य के भाव के साथ विदा होगा। ध्यान बिलकुल निःशुल्क है। इसके लिए कोई उपकरण नहीं चाहिए। ध्यान को समझना बिलकुल आसान है। बच्चे, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष, शिक्षित-अशिक्षित सभी इसे कर सकते हैं। किसी भी समय, कहीं भी इसका अभ्यास किया जा सकता है और इसके माध्यम से अपनी चेतनता को एक नया आयाम दिया जा सकता है।

ध्यान अंतर्यात्रा है और यह यात्रा वही साधक कर पाते हैं, जिन्होंने अपनी साधना के पहले चरणों में अपनी मानसिक चेतना को स्थिर, सूक्ष्म व शांत कर लिया है। अनुभव का सच यही है कि मानसिक चेतना की स्थिरता, सूक्ष्मता व शांति ही प्रकारांतर से परामानसिक चेतना की अनुभूति है। इस अनुभूति में व्यापकता व गुणवत्ता की संवेदना का अतिविस्तार होता है साथ ही इसे पाने पर अंतश्चेतना स्वतः ही ऊर्ध्वगमन के लिए प्रेरित होती है। ❑

महात्मा रामलाल के सत्संग से प्रेरित होकर एक व्यापारी ने अपने व्यापार में ईमानदारी बरतने का संकल्प लिया। इस तरह कुछ ही वर्षों में उसे करोड़ों रुपयों का लाभ हो गया। एक दिन व्यापारी एक लाख रुपया लेकर महात्मा जी को देने पहुँचा। महात्मा जी रुपये को देखकर बोले—"भैया! तुम्हारे-मेरे संबंध सांसारिक नहीं, पारमार्थिक थे। मैंने तुम्हें व्यापार में ईमानदारी बरतने का उपदेश इस लोक में धन कमाने के उद्देश्य से नहीं दिया था। मैंने तुम्हें ईमानदारी की प्रेरणा मानव जीवन को सफल करने और परलोक में अच्छा स्थान प्राप्त करने के उद्देश्य से दी थी। मैं तुम्हारा धन लेकर क्या करूँगा। इसे वापस ले जाओ। किसी अनाथ या बीमार की सेवा-सहायता में इस धन का उपयोग करना।" व्यापारी संत की बात सुनकर उनकी विरक्ति के प्रति नतमस्तक होकर चला गया।

बुद्धत्व की प्राप्ति

बुद्धत्व प्राप्ति के महान संकल्प के साथ सिद्धार्थ को तप-साधना करते हुए वर्षों बीत चुके थे। उनकी साधना पूर्णमासी के चाँद की तरह बढ़ती जा रही थी, चमकती जा रही थी। वसंत ऋतु समाप्त होने वाली थी और कुछ ही दिनों में सिद्धार्थ 35 वर्ष के होने वाले थे। ध्यान करते-करते चार सप्ताह पूरे होने में 24 घंटे शेष थे। भोर होने वाली थी। सूर्योदय नहीं हुआ था और न ही उषा का आगमन। उस शांत, नीरव, ब्रह्ममुहूर्त में पीपलवृक्ष के नीचे ध्यानस्थ सिद्धार्थ ने अपने शरीर को थोड़ा आराम देना चाहा। वे वहीं लेट गए और कुछ ही देर में उन्हें झपकी आ गई। उसी अवस्था में एक के बाद एक पाँच स्वप्न प्रकट हुए, जो कि भविष्य की ओर संकेत करने वाले पूर्वाभास थे। स्वप्न समाप्त होते ही सिद्धार्थ जाग उठे और उन स्वप्नों पर विचार करने लगे।

प्रथम स्वप्न के अंतर्गत उन्होंने अपना विशाल विराट रूप देखा। उन्होंने देखा कि वे आज के नेपाल और भारत की संपूर्ण धरती पर लेटे हुए हैं, जो कि उनके लिए बिछौना बन गई है। हिमालय का उत्तुंग शिखर उनका तकिया बन गया है। उनके पाँव दक्षिण भारत में कन्याकुमारी तक फैले हुए हैं और दक्षिण महासागर पर टिके हैं, जो उनका पाद-प्रक्षालन कर रहा है। दाहिना हाथ पश्चिम में अरब सागर के तट पर पड़ा है और बायाँ हाथ पूर्व में बंगाल की खाड़ी के तट पर। दोनों समुद्र उनकी हथेलियों और उँगलियों का प्रक्षालन कर रहे हैं।

द्वितीय स्वप्न में उन्होंने देखा कि क्षीरिका नामक घास उनकी नाभि से निकलकर आकाश की ओर उन्नतिशील है और रथ के पहिये के आकार का कमल खिला हुआ है। तीसरे स्वप्न में उन्होंने देखा कि विभिन्न रंगों के अनगिनत पक्षी सभी दिशाओं से उड़कर उनके पास आ रहे हैं। इसी प्रकार उन्होंने दो स्वप्न और देखे। सिद्धार्थ उन स्वप्नों के अर्थों पर चिंतन करने लगे। वे स्वप्न संकेत कर रहे थे कि उनको बुद्धत्व प्राप्त होने ही वाला है और उनके उपदेशों का प्रभाव सारी दुनिया पर पड़ेगा। उनका उपदेश सारी दुनिया में फैलेगा।

सभी दिशाओं से विभिन्न रंगों के पक्षियों का आना इस बात का संकेत था कि प्रत्येक जाति, वर्ग, संप्रदाय और विभिन्न देशों के लोग उनके बताए मार्ग को अपनाएँगे। सिद्धार्थ पुनः पद्मासन लगाकर इस दृढ़ निश्चय के साथ ध्यान करने बैठे कि जब तक वे बुद्धत्व प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक वे अपने आसन से नहीं उठेंगे।

जब वे दृढ़ निश्चय के साथ बैठे तो बुरे विचारों व बुरी चेतनाओं के झुंड-के-झुंड ने, जिन्हें 'मार' कहा जाता है, उन पर आक्रमण किया। एक बार तो सिद्धार्थ को डर लगा कि कहीं ये 'मार', ये बुरे विचार उन पर हावी न हो जाएँ, उनकी साधना को विफल न कर दें, परंतु अपना सारा साहस बटोरकर मन-ही-मन उन बुरे विचारों को चुनौती देते हुए उन्होंने कहा—"मुझमें श्रद्धा है, मुझमें वीर्य (ब्रह्मचर्य) है, मुझमें प्रज्ञा है, फिर तुम मुझे कैसे पराजित कर सकते हो? चाहे वायु नदी के स्रोत को सुखाने में भी सफल हो जाए, पर तुम मुझे मेरे निश्चय से, संकल्प से, तपस्या से, साधना से नहीं डिगा सकते; क्योंकि मेरा तो यही मानना है कि पराजित होकर जीने की अपेक्षा संग्राम में मर जाना मेरे लिए अधिक श्रेयस्कर है।" सिद्धार्थ के दृढ़ निश्चय के सामने सचमुच कोई भी बुरे व अकुशल, अशुभ विचार टिक नहीं पाए। वे हार मानकर अपने आप चले गए।

अब तो क्षण-प्रतिक्षण की सजगता का अभ्यास करते-करते सिद्धार्थ का चित्त, शरीर और श्वास-प्रश्वास पूरी तरह एकाकार हो गए थे। लगातार ध्यान और सतत सजगता व जागरूकता के कारण उन्हें चित्त को एकाग्र कर शरीर के अणु-अणु का निरीक्षण करने की अद्‌भुत शक्ति प्राप्त हो गई थी। वे शरीर और चित्त के एक-एक अणु-परमाणु को बींधकर उसके पार जा सकते थे। ध्यान करते-करते सिद्धार्थ ने अनुभव किया कि मैं कौन हूँ। उनकी अंतदृष्टि और भी पैनी हो गई। ध्यान-साधना में लीन रहते हुए चेतना की नई-नई परतें उनके सामने बिजली की कौंध के समान खुलती जातीं। ध्यान की गहन से गहनतम अवस्था में जाकर उन्होंने अपने सभी भूतकाल के जन्मों, जीवनों और मृत्युओं को देखा। उन्होंने अपने शरीर

के प्रत्येक अणु-परमाणु में समस्त लोकों की उपस्थिति और भूतकाल, वर्तमान एवं भविष्यकाल के तीनों आयामों, देश-काल की सभी अवस्थाएँ साक्षात् रूप से देखीं।

ध्यान की और गहन अवस्था में उतरकर उन्होंने देखा कि किस प्रकार अनगिनत जगतों का उत्थान और पतन होता है, उनका सृजन और विध्वंस कैसे होता है। उन्होंने अपनी प्रत्यक्ष अनुभूति से देख लिया कि किस प्रकार तमाम प्राणी अनगिनत जन्मों और मृत्युओं के बीच से गुजरते हैं।

ध्यान की और गहराइयों में उतरकर उन्होंने पाया कि प्राणिमात्र अज्ञान के कारण अनेक प्रकार के दु:ख और कष्ट भोगते हैं। लोभ, मोह, क्रोध, अहंकार, भय, भ्रम, रोग-द्वेष आदि सभी की जड़ अज्ञान है। अज्ञान के दूर होने से राग-द्वेष, मोह इत्यादि समूल नष्ट हो गए तो चित्त निर्मल हो गया, निर्विकार हो गया एवं फिर चित्त में अनंत करुणा, अनंत मुदिता, अनंत समता, अनंत उपेक्षा का उदय हुआ।

वे इंद्रियातीत अवस्था में चले गए और अनुत्तर अवस्था को प्राप्त हो गए। उसे इंद्रियों से न तो बयान किया जा सकता है और न ही समझा जा सकता है। उसकी तो बस, अनुभूति ही की जा सकती है। ध्यान की गहनतम अवस्था में उन्होंने दिव्यदृष्टि, दिव्यश्रवण और अपनी जगह बैठे-बैठे ही कहीं भी आ-जा सकने की सामर्थ्य प्राप्त कर ली थी। इससे वे समस्त प्राणियों के हृदयों को देखते हुए, प्रत्येक प्राणी के मन की अवस्था को समझ ले रहे थे और आखिरकार ध्यान की गहनतम और अंतिम अवस्था में पहुँचते ही पूर्णिमा की रात्रिवेला में ज्ञान का पूर्ण प्रकाश, पूर्णिमा के प्रकाश की तरह उनके भीतर उतर आया। उनका अंतस् जगमगा उठा। उनका अंतस् दिव्य प्रकाश से, दिव्य ज्ञान से आलोकित हो उठा। उन्हें बोधत्व की, बुद्धत्व की प्राप्ति हो चुकी थी। वे सिद्धार्थ से बुद्ध बन चुके थे और आज उन्हें सचमुच ऐसी अनुभूति हो रही थी मानों हजारों योनियों के कारागार से उन्हें आजादी मिल गई हो। भगवान बुद्ध को प्राप्त हुआ बुद्धत्व साधकों की जीवनयात्रा का अंतिम शिखर है एवं सदा सभी के जीवन को प्रेरित करता रहेगा। ❑

इंग्लैंड के सर वाल्टर रैले तलवारबाजी के लिए प्रसिद्ध थे। उनके सरल स्वभाव और सहजता की खूब प्रशंसा होती थी। एक बार एक युवक ने सर रैले को चुनौती देते हुए कहा—"सुना है कि आपकी तलवारबाजी का जवाब नहीं। यदि आप ऐसा मानते हैं तो कृपया मेरे साथ युद्ध करें।" युवक की बात सुनकर सर रैले बोले—"मित्र, महज मनोरंजन के लिए युद्ध करना समझदारी नहीं है। युद्ध से शांति अधिक अच्छी है।" सर रैले की बात सुनकर युवक व्यंग्य से मुस्कराकर बोला—"आपमें हिम्मत ही नहीं है कि मुझसे तलवार लेकर भिड़ सकें।" इसके बाद युवक ने सर रैले के मुँह पर थूक दिया।

सर रैले ने सहजतापूर्वक रूमाल निकालकर थूक पोंछा और बोले—"यदि थूक पोंछने जितनी सरलता से मैं मनोरंजन के लिए की गई मानव हत्या का पाप पोंछने की ताकत रखता तो मैं तुम्हारे साथ तलवार लेकर भिड़ने में देरी नहीं करता।" यह सुनते ही युवक सर रैले के पैर पकड़कर गिड़गिड़ाते हुए बोला—"सर आप महान हैं। आपकी सहनशीलता, करुणा, दया व समझदारी का जवाब नहीं।" इसके बाद से वह युवक सर रैले का शिष्य बन गया।

वैदिक विज्ञान के ज्ञाता ऋषि दयानंद

भारतीय संस्कृति में शिवरात्रि पर्व का बड़ा महत्त्व है; क्योंकि यह पर्व भगवान शिव के जीवन दर्शन को समझने के लिए प्रेरित करता है। सन् 1837 की शिवरात्रि ने मूलशंकर को स्वामी दयानंद सरस्वती बना दिया था। स्वामी दयानंद का जन्म सन् 1824 में गुजरात प्रांत के मोरबी के टंकारा ग्राम में एक ब्राह्मण के घर में हुआ था। उनका संन्यास पूर्व नाम मूलशंकर था। पिता का नाम श्री कर्षण लाल जी व माता का नाम यशोदा बाई था। पिता शैव मत के थे, किंतु मूलशंकर का स्वभाव अंधविश्वासी नहीं था। उनमें जिज्ञासा की भावना थी। उस अवस्था में ऐसी भावना सभी में नहीं होती है। उनके इस जन्म की आत्मा में महात्मा के गुण थे।

वे जब 14 वर्ष के हुए तब अपने पिताजी के कहने पर उन्होंने शिवरात्रि का व्रत रखा। उस रात शिव मंदिर में सब साधक प्रार्थना कर जब सोने लगे, तब बालक मूलशंकर, शिवदर्शन के लिए विश्वास के साथ अपनी निद्रा की आहुति देते हुए जागते रहे। थोड़ी देर बाद मध्यरात्रि के लगभग उन्होंने देखा कि मूषकों का दल आकर इधर-उधर शिवमूर्ति पर उछल-कूद कर रहा है। मूलशंकर इस दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित हो गए और ध्यान से देखने लगे कि ये कैसे शिव जी हैं, जो एक मूषक को हटा नहीं सकते। उसी समय उनका शिवमूर्ति पर से विश्वास उठ गया और उन्हें बोध हो गया तथा उन्होंने संकल्प किया कि मैं सच्चे शिव का दर्शन अवश्य करूँगा।

कालांतर में उनके घर में दो मौतें हो गईं। प्रथम प्रिय छोटी भगिनी की और दूसरी पूज्य चाचा की। मृत्यु से उन्हें बहुत गहरा सदमा पहुँचा। इन घटनाओं से उनके मन में वैराग्य की भावना उत्पन्न हो गई और पुन: उनके मन में प्रश्न उठा कि यह मृत्यु क्या है? इस पर विजय पाना है। इस प्रकार सन् 1844 में वैराग्यभाव से वे घर से बाहर निकल पड़े—सत्य और शिव को जानने के लिए। कितने मठ और तीर्थस्थानों में घूमे, तमाम साधु-संन्यासियों से मिलते रहे और महात्माओं से योगविद्यादि को प्राप्त कर स्वामी परमानंद परमहंस से वेदांत दर्शन का अध्ययन उन्होंने किया और चाणोद में दक्षिणी स्वामी पूर्णानंद से संन्यास की दीक्षा ली और मूलशंकर से स्वामी दयानंद सरस्वती हो गए।

तदुपरांत 15 वर्ष तक उन्होंने कठोर योग-साधना की और उसके बाद वेद-व्याकरण के ज्ञाता, प्रज्ञाचक्षु गुरु विरजानंद जी से विद्याध्ययन कर लेने के पश्चात जब स्वामी दयानंद गुरु दक्षिणा देने के लिए प्रस्तुत हुए, तब उनके गुरु ने कहा—"भारत अविद्यावश कुसंस्कारों में डूबा हुआ है। लोग वेदों को भूल गए हैं और उसका मिथ्या अर्थ प्रचलित किया गया है। जाओ वेदों का उद्धार करो। उनको सत्यार्थ का दर्शन कराओ, यही मेरी गुरु दक्षिणा होगी।" इस प्रकार उनकी आज्ञानुसार वेदों का सत्यार्थ प्रकट करने और समाज सुधार के लिए निर्भय वीर संन्यासी आगे बढ़ने लगे। उनकी वाणी में सत्यता का आकर्षण था, जिससे अनेक लोग प्रभावित होते गए। इसके पश्चात ऋषि दयानंद के शिष्यों और उनके समर्थ सहयोगियों ने मिलकर सर्वप्रथम सन् 1875 में मुंबई में आर्य समाज की स्थापना की, जिससे कि वेद एवं वैदिक धर्म की विशेषता का सम्यक रूप प्रचलित हो सके।

उनके सामने शास्त्रार्थ में कोई भी नहीं टिक पाता था। इस कारण सभी ओर खलबली-सी मच गई। उन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार के लिए भारत के प्राय: सभी राज्यों में भ्रमण किया। मूर्तिपूजा का प्रबल खंडन किया और कहा कि ईश्वर के स्थान पर प्रतिमा-पूजन का वेदों में विधान नहीं है। उन्होंने कहा कि यजुर्वेद (32/3) में कहा गया है—**'न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यश:।'** अर्थात परमेश्वर की कोई प्रतिमा—मूर्ति नहीं है, जिसका नाम महान यशदायक है।

स्वामी दयानंद ने 'सत्यार्थ प्रकाश' ग्रंथ लिख कर सभी में नई जाग्रति उत्पन्न कर दी। अंधविश्वासियों को सत्य ज्ञान से परिचित करा दिया। स्वामी दयानंद ने कहा—"यदि दान देना है तो उपकार करने वाले सुपात्रों और दीन-दु:खियों को देना चाहिए।" उन्होंने जाति प्रथा एवं छूआछूत को मिटा दिया। उन्होंने विधवाओं का विवाह वेदानुकूल बताया। ऋग्वेद में स्वयं लिखा हुआ है—**'उदीर्ष्व**

नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।' (ऋग्वेद-10/18/8) अर्थात—हे विधवा नारी! तू उठ और मृत पति को छोड़कर जीवित पुरुषों में से किसी एक को प्राप्त हो। शुद्धि-संस्कार द्वारा ईसाई और मुसलमान भी आर्यधर्म को अपनाना चाहें तो अपना सकते हैं। इस प्रकार उन्होंने बहुत सुधार कार्य किया। स्वामी दयानंद सत्यनिष्ठावान महात्मा थे। वे सत्य, वेदविद्या के समर्थक थे। धार्मिक ग्रंथों में जो प्रक्षिप्त बातें थीं, उन्हें वे नहीं मानते थे। वेद को वे स्वत: प्रमाण मानते थे।

महर्षि दयानंद के जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य परोपकार था। सन् 1868 के आरंभ की बात है। कर्णवास में एक दिन पंडित इंद्रमणि ने स्वामी जी से कहा—"आप अवधूत होकर खंडन-मंडन के गोरखधंधे में क्यों पड़े हैं" तो उन्होंने उत्तर दिया—"मेरे लिए यह व्यर्थ का कार्य नहीं है, प्रत्युत यह ऋषियों का ऋण चुकाना है। स्वार्थी लोगों ने ऋषि संतानों को कुरीतियों में फँसा रखा है। मुझसे उनकी यह दीन-दशा देखी नहीं जाती। मैंने उन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रण कर लिया है।" इसीलिए महर्षि ने आर्य समाज का छठा नियम बनाया—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। इसी प्रकार आर्य समाज का नौवाँ नियम बनाया—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए, किंतु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

उनका महान ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' अद्भुत है। जो इसे ध्यान से पढ़ता है उसे धर्म-अधर्म का ज्ञान होने लगता है। उसी प्रकार पतंजलि ऋषि का योगशास्त्र ऐसा ग्रंथ है, जिसके व्यवहार से शरीर और मन का मैल साफ होने लगता है। उनका कहना था कि धार्मिक-अधार्मिक तो देश में रहते ही हैं, परंतु धार्मिक अधिक और अधार्मिक न्यून होने से समाज और देश का विकास होता है।

महर्षि दयानंद सत्य के प्रबल पक्षधर थे। आर्य समाज के दस नियमों में से चौथा नियम उन्होंने दिया—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। वे मानते थे कि मनुष्य की आत्मा सत्य-असत्य को पहचानती है, परंतु पंडित लोग अपनी प्रतिष्ठा, हानि और निंदा के भय से सत्य को प्रकट नहीं करते। उन्होंने 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में निम्न श्लोक उद्धृत किया है—

नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत्॥

अर्थात—सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं और झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं है। सत्य से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है। इसलिए सत्य का आचरण करो।

इस प्रकार स्वामी दयानंद का विचार केवल वैदिक धर्म को सत्य सिद्ध करना नहीं था, बल्कि उन्होंने समाज सुधार और अपने देश की स्वतंत्रता, एकता के बारे में विचार व्यक्त किया था। स्वामी दयानंद का विचार था कि आचार के साथ यम-नियमों का पालन तथा आसन-प्राणायाम से शरीर की शुद्धि, आरोग्य और धारणा, ध्यान, समाधि की सिद्धि से सच्चिदानंद की प्राप्ति हो सकती है और उन्होंने ऐसा ही करके सिद्धि अर्थात समाधि में शिव के दर्शन कर लिए थे। अत: स्वामी दयानंद भी ईश्वर के प्रति, प्रेम, भक्ति और प्रार्थना के समर्थक थे।

एक बार स्वामी दयानंद से मुंशीराम ने कहा था—"आपकी तर्कशक्ति प्रबल है। आपने हमें चुप करा दिया, परंतु परमात्मा की कोई हस्ती है, ऐसा विश्वास नहीं दिलाया?" स्वामी जी ने कहा—"श्रद्धा की वेदी पर विश्वास का दीपक जलाओ, परमेश्वर का साक्षात्कार हो जाएगा।" इस मानसी दीक्षा ने उन्हें स्वामी श्रद्धानंद बना दिया। स्वामी दयानंद की जीवनी देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उनका जन्म वेदों का उद्धार करने और सबको सत्य धर्म से बोध कराने के लिए हुआ था। इसी सत्यता को विद्यमान रखने के लिए उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा।

कार्तिक मास की अमावस्या को स्वामी दयानंद निर्वाण दिवस भी मनाया जाता है; क्योंकि इसी पर्व के एक मास पहले विरोधियों ने मिलकर वैदिक विज्ञान के ज्ञाता स्वामी दयानंद को गुप्त रूप से, धन के लोभी जगन्नाथ के द्वारा उनके दुग्ध में कालकूट विष दे दिया था। स्वामी जी को जैसा विष दिया गया था यदि साधारण मानव खाता तो तुरंत मर जाता, किंतु योग सिद्ध ब्रह्मचारी का यह सबसे बड़ा प्रमाण है कि वे 1 मास तक प्राण को धारण किए रहे। शरीर विष से छलनी होकर निर्जीव हो गया था। नाड़ी रुक-रुककर चलती थी। इतने महान कष्ट में भी उनका मन, बुद्धि, चित्त चंचल नहीं थे, बल्कि शांत गायत्री मंत्र द्वारा परमानंद को मिलने के लिए व्याकुल थे। दीपावली के दिन सायं को सभी प्रदीपों को जलाकर, शुभ घड़ी में आनंद का दर्शन करते हुए उनके अंतिम शब्द थे—हे ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो। यह मोक्षप्राप्ति उन्हें कार्तिक

अमावस्या संवत् 1940 (30 अक्टूबर, 1886) को सायं 6 बजे हुई थी।

स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा मृत्यु से पूर्व कहे शब्द— हे ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो का एक गंभीर अर्थ है। वे वेदों के महान विद्वान थे व बहुत प्रसन्नतापूर्वक यह शब्द कहे गए हैं कि हे भगवान! तेरे द्वारा जीवों के कल्याण की इच्छा है, वह पूर्ण हो। स्वामी जी ने अपना संपूर्ण जीवन मानव-कल्याण के लिए लगा दिया था और इसी कल्याण की ईश्वरीय इच्छा के पूर्ण होने की प्रार्थना अंत में वे कर गए थे। स्वामी दयानंद का जीवन वैदिक संस्कृति के लिए अमूल्य धरोहर है। ❑

वर्षों पहले की घटना है। सुदूर हिमालय की घाटियों में एक सुरम्य नगर बसा हुआ था, जिसका नाम था—नरेंद्र नगर। नरेंद्र नगर में एक धनाढ्य सेठ अपने परिवार के साथ निवास करता था। उस सेठ का पुत्र बहुत संस्कारवान था, इसलिए उसने निश्चय किया कि वह एक समझदार लड़की को ही अपनी पुत्रवधू बनाएगा।

सेठ जब भी किसी लड़की को देखने जाता तो प्रश्न करता—"सरदी, गरमी और बरसात में सबसे अच्छा मौसम कौन-सा है?" एक लड़की ने उत्तर दिया—"गरमी का मौसम सबसे अच्छा है। उसमें हम पहाड़ पर घूमने जाते हैं। सुबह-सुबह वहाँ टहलने में बहुत सुख मिलता है।"

दूसरी लड़की ने कहा—"जाड़े का मौसम सबसे अच्छा होता है। इस मौसम में तरह-तरह के पकवान बनते हैं। हम जो भी खाते हैं, वह सब आसानी से पच जाता है। सरदी के मौसम में गरम कपड़ों को पहनने का अपना ही सुख है।" तीसरी लड़की ने कहा—"मुझे तो वर्षा का मौसम पसंद है। इस मौसम में पृथ्वी पर चारों ओर हरियाली होती है। बारिश में भीगने में बहुत मजा आता है।" सेठ जी इन लड़कियों के जवाबों से संतुष्ट नहीं हुए और निराश हो गए। उन्होंने लड़कियाँ देखना बंद कर दिया। तभी अचानक एक मित्र के यहाँ उनकी मुलाकात एक लड़की से हुई।

उन्होंने उससे वही प्रश्न दोहराया। लड़की बोली—"शरीर व मन स्वस्थ हैं, तो सभी मौसम अच्छे हैं। यदि हमारा तन-मन स्वस्थ नहीं, तो हर मौसम बेकार है।" सेठ इस उत्तर से बेहद प्रभावित हुए। उन्होंने उस लड़की को अपनी पुत्रवधू बना लिया।

प्रारब्ध-कर्मों का अटल-विधान

सामान्य जीवन के घटनाक्रम समझ में आते हैं कि क्या-क्यों घट रहा है, लेकिन जब अचानक कुछ ऐसा घटित हो जाता है, जिसका कोई औचित्य समझ में नहीं आता या कारण पकड़ में नहीं आता या फिर जिस पर अपना कोई वश नहीं चलता एवं लगता है कि बलात् ही हमें इस घटनाक्रम, निर्णय, व्यवहार तथा परिस्थिति का हिस्सा या साक्षी बनना पड़ रहा है तो मन परेशान हो उठता है। उदाहरण के तौर पर—किसी गंभीर रोग का अचानक प्रकट हो जाना, किसी की आकस्मिक मृत्यु या आत्मीय जन का विछोह, अप्रत्याशित अपमान, विश्वासघात, हानि, क्षति आदि।

ऐसे में ईश्वर पर से विश्वास उठ जाता है कि वे ऐसा कैसे कर सकते हैं? उनकी न्याय-व्यवस्था पर लोग प्रश्नचिह्न लगाने लग जाते हैं। मन में लगता है कम-से-कम समय पर सचेत तो कर दिया होता। ऐसी परिस्थिति का सामना करने की तैयारी का मौका तो दिया होता। सँभलने का मौका तो दिया होता आदि। ऐसे में कई तो भगवान को गाली तक देने लगते हैं और कई नास्तिक बन जाते हैं या फिर दूसरों को कोसने लग जाते हैं। उनके प्रति दुर्भाव, विद्रोह से भर जाते हैं। उनको कटघरे में लाने की कोशिश करते हैं या फिर कुछ इसे भाग्य या दैव-इच्छा कहकर मन को समझा लेते हैं।

वस्तुत: जीवन के ये अप्रत्याशित घटनाक्रम या परिस्थितियाँ कहीं आसमान से नहीं टपकतीं, बल्कि इनके तार हमारे कर्मों से जुड़े होते हैं, जो भले ही हमें उस समय समझ में नहीं आ रहे हों। ये प्रारब्ध कर्म होते हैं, जो व्यक्तिगत स्तर पर भी घट सकते हैं तथा सामूहिक स्तर पर भी। दोनों ही स्तर के पूर्व-कर्म इनका आधार होते हैं। भारतीय चिंतन-परंपरा में कर्मफल की स्व-संचालित न्याय-व्यवस्था यहाँ काम कर रही होती है, जिससे ईश्वर का वास्तव में कोई लेना-देना नहीं होता।

भौतिक रूप में यदि कोई बिजली के तार को छुएगा तो बिजली का झटका लगेगा ही। ऐसे ही सूक्ष्म नियमों के साथ कहीं, कभी कोई छेड़खानी हुई है तो ये परिपक्व होकर एक दिन प्रारब्ध कर्म के रूप में अपना फल देंगे ही।

यह ईश्वर की स्व-संचालित कर्मफल-व्यवस्था के अंतर्गत होता है। यदि स्वयं ईश्वर भी धरती पर मनुष्य रूप में अवतरित हो जाएँ तो वे भी इस विधान से नहीं बच सकते। भगवान राम का वनवास, पिता का बिछोह, पत्नी का वियोग जैसे घटनाक्रम तथा एक बहेलिए के तीर से भगवान श्रीकृष्ण का देहत्याग एवं इनके पूरे यादवकुल का सर्वनाश आदि ऐसे ही प्रारब्ध कर्मों के उदाहरण हैं।

यहाँ शास्त्रों एवं ऋषियों द्वारा प्रतिपादित कर्म के भेदों की बात करना प्रासंगिक होगा, जिससे कर्मों की गति को समझा जा सके। कर्मों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है—क्रियमाण, संचित एवं प्रारब्ध। क्रियमाण कर्म तत्काल फल देते हैं—इनका औचित्य समझ में आता है। ये प्राय: शारीरिक होते हैं, जैसे—नशा किया और उन्माद चढ़ गया; विष खाया और उसका असर हो गया; अग्नि को छूते ही हाथ जल गया आदि। खान-पान के आधार पर स्वास्थ्य को बनते-बिगड़ते इसी आधार पर देखा जा सकता है। बिना किसी मानसिक ग्रंथि के शारीरिक कर्म क्रियमाण कर्म कहे जा सकते हैं।

दूसरा—संचित कर्म; जो तत्काल फल देने की स्थिति में नहीं होते। यदि इन्हें अनुकूल वातावरण मिले तो ये फल दे भी सकते हैं और यदि इनके प्रतिपक्षी कर्मों का सामना करना पड़े तो इनका प्रभाव नष्ट भी हो सकता है। ये एक तरह से अपरिपक्व एवं क्षीण कर्म होते हैं, जिनके संस्कार हलके होते हैं। प्राय: सत्संग, स्वाध्याय, दैनिक पूजा एवं तीर्थयात्राओं आदि के माध्यम से जिन पापों के कटने की बात की जाती है, वे ऐसे ही अल्पवीर्य संचित कर्म होते हैं।

उपरोक्त दो तरह के कर्मों के आधार पर ही हम अपने भाग्यविधाता होने की बात करते हैं। तीसरे प्रारब्ध कर्मों पर किसी का वश नहीं रहता। प्रारब्ध तीव्रभाव एवं संवेग से किए गए कर्म होते हैं, जो अपरिपक्व अवस्था में होते हैं तथा अपनी परिणति में अटल फल लिए होते हैं। ये कब फलित होंगे, सामान्यतया कुछ कहा नहीं जा सकता। ये इस जन्म में भी फलित हो सकते हैं और किसी अन्य जन्म में भी। राजा धृतराष्ट्र को एक सौ आठवें जन्म में आँख

फोड़ने का कर्म जन्मांध के रूप में भोगना पड़ा था। दिव्यद्रष्टा इनको अपनी दृष्टि से देखते हैं और व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्तर पर इनकी सटीक भविष्यवाणी भी कर देते हैं। ज्योतिषविशारद् भी अपने स्तर पर इनका आंशिक अनुमान लगाने का प्रयास करते हैं। किसी व्यक्ति का जन्म-मृत्यु, विवाह या अन्य संबंध यश-अपयश आदि इसी के अंतर्गत आते हैं।

प्रचंड तप एवं पुरुषार्थ द्वारा एक स्तर तक इनके प्रभाव को हलका किया जा सकता है, लेकिन नष्ट नहीं। इनका वेग इतना तीव्र एवं प्रभाव इतना अमोघ होता है कि इनको प्रारब्ध या भाग्य के रूप में स्वीकार करने के अलावा कोई चारा नहीं होता। बड़े-बड़े महापुरुषों तक को ऐसे प्रारब्ध कर्मों को भोगते देखा जा सकता है, जहाँ इनकी आशा नहीं की जा सकती थी। प्राय:श्रेष्ठ लोगों को भी जब हम भारी कष्ट उठाते देखते हैं तो आश्चर्य होता है कि अच्छे लोगों के साथ बुरा क्यों होता है।

लियो टॉल्स्टॉय, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, शंकराचार्य, परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी जैसे महापुरुषों ने ऐसे ही प्रारब्ध कर्मों के साथ देह का त्याग किया था। अधिकांशत: ऐसी जीवनमुक्त आत्माएँ कोई कर्मभार आगे लेकर नहीं जाना चाहतीं। इसी जन्म में कर्मों का हिसाब-किताब पूरा कर अगली यात्रा पर वे बढ़ती हैं, साथ ही दूसरों के कर्मों को अंशत: स्वयं पर लेते-लेते व अपना पुण्य दूसरों पर लुटाते-लुटाते अंतत: भारी रोग एवं कष्ट आदि के रूप में क्षतिपूर्ति करती वे देखी जाती हैं।

ईश्वरीय न्याय व्यवस्था के अंतर्गत होने के कारण, प्रारब्ध कर्मों के पीछे ईश्वर की करुणा को ही समझा जा सकता है। तात्कालिक रूप में मरणांतक, अप्रिय, कष्टकारी, क्रूर प्रतीत होते हुए भी ये अपने साथ ईश्वरीय अनुग्रह लिए होते हैं। इनकी हानि, विक्षोभ आदि अपनी जगह, लेकिन ये चित्त को हलका करके जाते हैं और जीवन के बृहत् क्रम में ये एक महान योजना का हिस्सा प्रतीत होते हैं तथा साथ ही व्यक्ति को एक नई अंतर्दृष्टि, समझ एवं चेतनता देकर जाते हैं। सामूहिक स्तर पर भी समाज ऐसे प्रारब्ध के झटकों को खाकर नए रूप में संगठित होता है और एक सशक्त समाज एवं राष्ट्र के रूप में उभरता है। जापान जैसा राष्ट्र इसका उदाहरण है। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान एटम बम गिरने की दुर्घटना के बाद विश्वयुद्ध की समाप्ति हुई, परंतु कालांतर में जापान विश्व की बड़ी आर्थिक शक्ति के रूप में उभरा।

भारतवर्ष की सदियों की गुलामी का दौर एक ऐसा ही उदाहरण रहा है। महर्षि अरविंद के शब्दों में घोर तमस् में जकड़े देश को हंटर से जगाने के लिए विदेशी हुकूमत के रूप में प्रारब्ध के प्रबल एवं विषम दौर आए थे। महर्षि अरविंद ने स्वयं स्वाधीनता संग्राम के इस दौर में अल्पकालीन ही सही, लेकिन अपनी निर्णायक भूमिका निभाई थी। आजादी के बाद देश नित नए प्रारब्धों का सामना करते हुए पुन: संगठित होकर अपनी गौरवपूर्ण स्थिति की ओर अग्रसर हुआ है और आज एक उभरती हुई विश्वशक्ति के रूप में सबके सामने है।

यही स्थिति व्यक्ति की है। पुरुषार्थी, आशावादी, ईश्वरपरायण व्यक्ति प्रारब्ध के आगे घुटने टेककर नहीं बैठ जाता या जीवन से हताश-निराश होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ नहीं होता, बल्कि अपने धैर्य एवं साहस के बल पर प्रारब्ध का सामना करता है। अपने पुरुषार्थ एवं तप के बल पर इनके प्रभाव को क्षीण करता है और इनके पार हो जाता है, इनसे आवश्यक सीख लेते हुए जीवनक्रम को और बेहतर बनाता है और अपने जीवन को परिपूर्णता के महालक्ष्य की ओर ले जाता है। ❑

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

अर्थात—एक ही सत्रूप परमेश्वर का विद्वत्जन विभिन्न प्रकारों से वर्णन करते हैं। उसी परमात्मा को इंद्र, मित्र, वरुण, यम तथा अग्नि कहा गया है। वह परमात्मा भली प्रकार पालनकर्त्ता होने के कारण गरुत्मान् है।

आत्मविश्वास को कुछ ऐसे बढ़ाएँ

जीवन के किसी भी क्षेत्र में आत्मविश्वास सफलता प्राप्ति का प्रमुख आधार है। यह आत्मविश्वास प्रारंभ से ही हमारे साथ हो यह आवश्यक नहीं। इसका होना कई कारकों पर निर्भर करता है। सबके आत्मविश्वास के अपने-अपने दायरे होते हैं। यह व्यक्ति की प्रकृति, स्वभाव, उसके परिवेश, पारिवारिक-सामाजिक पृष्ठभूमि आदि पर निर्भर करता है, लेकिन इतना सुनिश्चित है कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में यदि कोई चाहे तो आत्मविश्वास को बढ़ा सकता है एवं एक मनचाहा सफल जीवन जी सकता है।

आत्मविश्वास का अभाव हमारे विचार, भाव, व्यवहार एवं शरीर को प्रभावित करता है तथा इनके माध्यम से प्रकट भी होता रहता है। ऐसे में हमारी सोच रहती है कि यह काम बहुत कठिन है, हम इसे नहीं कर सकते। मुझे नहीं मालूम कि यह कैसे होगा, शायद मैं इसे नहीं कर पाऊँगा या दूसरे मुझसे बेहतर कर लेंगे आदि। इसके साथ उद्विग्नता, चिंता, भय, स्वयं के प्रति आक्रोश एवं कुंठा, परिस्थिति से अज्ञात-सा भय, असंतोष, हतोत्साहित अनुभव करना आदि भावनाएँ पनपती हैं।

इसके साथ कार्य में कम सक्रियता, कोई सुझाव देने में कठिनाई, धीमी शुरुआत, जीवन में परिवर्तन के लिए कुछ भी नया करने से बचना, जवाब जानते हुए भी दूसरों से सहायता या सलाह माँगना, दुविधा एवं सतत प्रोत्साहन की आवश्यकता अनुभव करना, पिछलग्गू बने रहना, दूसरों से आश्वासन की आशा रखना आदि इसके व्यावहारिक लक्षण रहते हैं। इसके साथ संकुचित एवं सिमटी हुई भावमुद्रा, लोगों से आँख न मिला पाना, सकपकाना, तनाव, उद्विग्नता, ढीलापन, आलस्य आदि इसके शारीरिक लक्षण रहते हैं।

यदि व्यक्ति चाहे तो इस स्थिति से ऊपर उठ सकता है। जब व्यक्ति आत्मविश्वास की कमी अनुभव करता है और इसके पार होने की इच्छा जागती है तो इसके बारे में विचार करता है। स्वयं व दूसरों को गौर से देखता है, इस पर लोगों से चर्चा करता है, इससे संबंधित प्रेरक पुस्तकों का अध्ययन करता है। उनके उदाहरण से यह समझने का प्रयास करता है कि किस तरह लोगों ने इसका सामना किया, इससे संघर्ष किया और इसके पार होकर एक सफल और आत्मविश्वासपूर्ण जीवन जिया।

आत्मविश्वास पर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि आत्मविश्वास कोई ऐसा तथ्य नहीं, जो किसी एक क्षेत्र से जुड़ा हो। सबके आत्मविश्वास का अपना-अपना क्षेत्र होता है। कोई हाथ में कलम-कागज के साथ तो कोई मंच पर, कोई एकांत में तो कोई भीड़ में, कोई पर्वत शिखर पर तो कोई सागर की लहरों के बीच आत्मविश्वास से लबरेज अनुभव करता है। सबके भिन्न-भिन्न क्षेत्र होते हैं, जहाँ वह अधिक आत्मविश्वासी अनुभव करता हो। अत: आत्मविश्वास पर समग्र मूल्यांकन की आवश्यकता है। किसी भी व्यक्ति को पूरी तरह से आत्मविश्वासहीन नहीं कह सकते। यह समझ हीनता से बाहर निकलने का रास्ता खोलती है।

लोग जितना बाहर से आत्मविश्वास से भरे दिखते हैं, जरूरी नहीं कि वो अंदर से भी उतना हों। प्राय: वे अंदर से कम ही होते हैं। अधिकांशत: वे अपना पूरा साहस बटोरकर परिस्थिति का सामना कर रहे होते हैं। यह समझ भी आत्मविश्वास-निर्माण का आधार बनती है। जहाँ खड़े हैं, वहीं से साहस व समझ के साथ आगे बढ़ना इसका राजमार्ग समझ आता है।

वस्तुत: आत्मविश्वास अभ्यास से अर्जित होता है, जो कहीं आसमान से नहीं टपकता। मात्र सोचने, कल्पना करने, स्वप्न देखने भर से आत्मविश्वास नहीं आ जाता। जिस भी क्षेत्र में हम आत्मविश्वास की कमी अनुभव करते हैं, उस क्षेत्र में छोटी-छोटी सफलताओं को अर्जित करने के साथ यह विश्वास पनपता है, विकसित होता है और अंतत: बुलंदियों को छूता है।

व्यक्ति स्वयं को जैसा मानता है, जितना मूल्य देता है, लोग भी उसी के अनुरूप व्यवहार करते हैं। प्राय: आत्मविश्वास की कमी में हमारी स्वयं से कुछ ज्यादा ही आशा-अपेक्षा और स्वयं की कमियों व गलतियों को माफ न करने की प्रवृत्ति रहती है। हर गलती के लिए स्वयं को

जिम्मेदार मानना उचित नहीं रहता; जबकि स्वयं को समग्रता में समझते हुए, स्वयं की त्रुटियों के प्रति थोड़ा उदार व्यवहार बरतते हुए इनको अधिक सहजता से लेते हुए आगे बढ़ा जा सकता था।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आत्मविश्वास अभ्यास के साथ बढ़ता है। जैसे शरीर की मांसपेशियाँ नियमित-निरंतर कसरत करने से विकसित होती हैं तथा एक गठीले शरीर के रूप में परिणाम देती हैं—ऐसे ही जहाँ हम विश्वास की कमी से जूझ रहे हों, वहाँ धीरे-धीरे अभ्यास के साथ इसमें सुधार किया जा सकता है। बचपन में चलने से लेकर कोई वाहन चलाना व तैराकी आदि व्यक्ति इसी तरह सीखता है। अपनी क्षमता के अनुरूप हम परिस्थिति का सामना करते हैं, बोझ को उठाते हैं, स्वयं को कसते हैं और आगे बढ़ते हैं।

इसी क्रम में आत्मविश्वास से युक्त व्यवहार का अभ्यास किया जा सकता है। परिस्थिति विशेष में जहाँ हम विचलित होते हैं, वहाँ विचार कर सकते हैं कि यदि हम विश्वासयुक्त होते तो कैसा व्यवहार करते। इसी के साथ यह भी कल्पना कर सकते हैं कि कोई आत्मविश्वासपूर्ण व्यक्ति अमुक परिस्थिति में कैसा व्यवहार करता। अपनी सोच के साथ अपने व्यवहार एवं हाव-भाव में ऐसा ही होने का प्रयास करें। धीरे-धीरे आत्मविश्वास हमारे जीवन का अंग बनने लगेगा।

इस प्रयास में सब कुछ अनुकूल ही होगा, आवश्यक नहीं। इसमें उतार-चढ़ाव भरे दौर भी आएँगे, जिनके लिए तैयार रहें। एक प्रयोगधर्मी साधक के रूप में देखें कि क्या काम करता है और क्या नहीं। परिस्थिति के अनुरूप स्वयं को आजमाने का प्रयास करते रहें। साहस के साथ नए कदमों को बढ़ाते रहें, जोखिम लेते रहें और लचीलेपन एवं विश्वास के साथ आगे बढ़ते रहें। इसमें बहुत कट्टर होने की आवश्यकता नहीं। सफलता व असफलता मिलकर आत्मविश्वास के विकास को अंजाम देती हैं—दोनों को स्वीकार करें व आगे बढ़ें।

इस रास्ते में गलतियाँ होंगी, लेकिन गलती तब तक गुनाह नहीं, जब तक आप इनसे सीखकर आगे बढ़ रहे हों। बार-बार एक ही गलती करना और इससे कुछ नहीं सीखना, यह तो उचित नहीं। हमारा सूत्रवाक्य होना चाहिए—पुनः कोशिश करो, फिर असफल हो, लेकिन बेहतरीन तरीके से।

ऐसे में हर असफलता के साथ आप आगे बढ़ते रहें। गलतियाँ वास्तव में सीखने के लिए होती हैं। जो कोई गलती नहीं करता, वह या तो एक सिद्ध है या उसका विकास अवरुद्ध हो चुका है। प्रगति-पथ पर व्यक्ति गलतियों के साथ ही आगे बढ़ता है।

अपनी पुरानी गलतियों, असफलताओं और बेवकूफियों के लिए स्वयं को दंडित करना व्यक्ति को आंतरिक रूप से कमजोर करता है। ऐसा करना स्वयं के प्रति हीनता के भाव को बल देता है। इस तरह हमारे आत्मविश्वास को बढ़ाने वाले प्रयास को आवश्यक पोषण नहीं मिल पाता। अतः स्वयं को कोसना बंद करें। इसके विपरीत सदा ही स्वयं को आशा-उत्साहपूर्ण संदेशों को सुनाते रहें, अपने कानों में विश्वासपूर्ण बातों को फुसफुसाते रहें, जैसे कि अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन देना हो। ऐसे संदेशों को तीव्र कर दें, ताकि आप इन्हें स्पष्ट रूप से सुन सकें।

इसके साथ ही अपने प्रति उदारभाव रखें। यह आत्मविश्वास बढ़ाने का एक महत्त्वपूर्ण अभ्यास है। स्वयं को हमेशा कोसते रहना एक बहुत बुरी आदत है, जो अच्छे कार्यों के लिए स्वयं को पुरस्कृत करने से वंचित करती है। अतः अपने प्रति अनावश्यक रूप से कठोरता को त्यागें व अपने हर अच्छे कार्य को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करें। आप पाएँगे कि अपने साथ सही व्यवहार आत्मविश्वास को बढ़ाने में आश्चर्यजनक रूप से सहायक सिद्ध हो रहा है। ❑

राम और सीता वनवास को जाने लगे तो लक्ष्मण की माँ और पत्नी ने लक्ष्मण से हर्षित होकर कहा—''हम दोनों तुम्हें विदा देते हैं।'' अपने इसी कर्त्तव्यपालन के भाव के कारण लक्ष्मण एवं उनकी माँ और पत्नी अधिक आदर्शवादी समझे गए और सराहे गए। जिस किसी को कर्त्तव्यपालन का अवसर मिले, उसे वह कभी नहीं चूकना चाहिए।

गुरु नानकदेव की तप-साधना

पंजाब के सिरसा में सैयद-पीरों का एक बहुत बड़ा केंद्र था। यहाँ बहुत से सैयद, मुल्ला, पीर इत्यादि लंबे अरसे से रह रहे थे। वे नाथसिद्धों की तरह से कठिन तपस्या और अपने शरीर को ज्यादा-से-ज्यादा कष्ट देकर बल प्राप्त करने का प्रयास किया करते थे। वे साधना और शारीरिक कष्ट से प्राप्त बल से आम जन को डराते व प्रभावित करते थे। अपने छिटपुट चमत्कारों के बल पर वे आम जनों को डराते थे, लेकिन ईश्वर की प्रेरणा से एक दिन भ्रमण करते हुए तप-साधना की साक्षात् प्रतिमूर्ति गुरु नानकदेव वहाँ पहुँच गए।

नानकदेव की तप-साधना एवं अपार आध्यात्मिक शक्तियों के कारण उनकी ख्याति तो पहले ही फैल चुकी थी। वहाँ रह रहे सैयद-पीर समझ गए कि यदि नानकदेव ज्यादा देर सिरसा में ठहर गए तो आम जनों पर उनकी पकड़ फीकी पड़ जाएगी; क्योंकि नानकदेव जगह-जगह इन तथाकथित चमत्कारों के भय में न आने के लिए लोगों को आगाह कर रहे थे।

उन सैयद-पीरों ने सोचा कि यदि नानकदेव को तपस्या और साधना के क्षेत्र में ही परास्त कर दिया जाए तो मार्ग निष्कंटक हो जाएगा; क्योंकि तब नानकदेव का आम जनों पर जो प्रभाव है, वह समाप्त हो जाएगा। अंतत: उन पीरों ने नानकदेव को चालीस दिन की तपस्या करने के लिए चुनौती दी। उनको लगता था कि नानक ऐसा कर नहीं पाएँगे, जिससे उन इलाकों में उनकी स्वयं ही भद्द पिटेगी। नानकदेव ने चालीस दिन साधना करने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। सभी पीर अपने भौरे (भूमिगत कमरे, जिसमें कई साधु-संन्यासी तपस्या करने के लिए चले जाते हैं और ऊपर से उसे बंद कर लेते हैं) में चले गए और साथ में जौ और जल भी ले गए।

उन सबने नानकदेव जी को भी एक भौरेनुमा कोठरी दे दी और उनके लिए भी वहाँ जौ और जल रखवा दिए। सैयद-पीर अपनी तपस्या में भी प्रतिदिन जौ खा लेते थे और जल भी पीते थे, लेकिन नानकदेव ने तो निर्जल और निराहार रहकर ही साधना शुरू कर दी। चालीस दिन निराहार और निर्जल रहकर गुरु नानकदेव ने घोर साधना की, पर इधर पूरे सिरसा में चर्चा होने लगी कि क्या नानकदेव बिना कुछ खाए-पिए चालीस दिन तक जिंदा रह पाएँगे? कुछ लोग तो दबी जुबान में यह भी कहने लगे थे कि पीरों ने नानकदेव को मारने के लिए ही यह चाल चली है।

चालीस दिन पूर्ण होते ही सभी को तपस्थान (भौरे) से बाहर निकलना था। चालीस दिन पूर्ण होते ही भौरे के बाहर लोगों की अपार भीड़ जमा हो चुकी थी। सभी लोग उन पीरों व गुरु नानकदेव को चालीस दिनों की साधना के बाद बाहर निकलते हुए देखना चाहते थे। सैयद-पीर पहले भी आम जनों को अपने इस प्रकार के कुतूहल व चमत्कार दिखाया करते थे, पर आम जन तो यही चाहते थे कि नानकदेव भौरे से सकुशल बाहर आ जाएँ।

एक-एक कर सभी पीर अपने भौरे से बाहर निकल आए। गुरु नानकदेव जी भी अपने भौरे से बाहर निकल आए, लेकिन उन्हें देखकर वहाँ उपस्थित आम जन हतप्रभ थे, अचंभित थे। क्यों? क्योंकि चालीस दिनों तक जौ और जल का सेवन करते रहने के बावजूद पीरों का चेहरा मुरझाया हुआ और निस्तेज था। नानकदेव जी ने चालीस दिनों तक जौ और जल को छुआ तक नहीं था, फिर भी उनका चेहरा तप के तेज से दमक रहा था। सभी पीर नानकदेव के तेजोमय चेहरे पर नजर टिकाकर आँखें नहीं मिला पा रहे थे। सिरसा के लोगों ने एक स्वर में नानक का जय-जयकार किया। उसके बाद पीरों का डर उनके मन से निकल गया।

सचमुच यदि तप-साधना अहंकार और बल-प्रदर्शन जैसे तुच्छ उद्देश्य से की जाए तो तप में तेज नहीं आ पाता, साधक में तेज नहीं आ पाता। तब तप निस्तेज ही बना रह जाता है। तप-साधना कोई कौतुक-कुतूहल नहीं, तमाशा नहीं, बल्कि चित्तशुद्धि की वैज्ञानिक प्रक्रिया है, आध्यात्मिक प्रक्रिया है। इसमें शुभ संकल्प व सदुद्देश्य होना आवश्यक है, तभी साधक अपनी तपस्या को पूर्ण कर पाता है और सफल हो पाता है। ❑

आत्मविश्वास से मिलती है सफलता

जीवनकाल में अनेक असफलताओं का सामना करने वाला व्यक्ति अगर अपना आत्मविश्वास बनाए रखता है तो एक-न-एक दिन उसे इच्छित सफलता अवश्य मिलती है। विडंबना यह है कि सामान्य जीवनयापन करते हुए व्यक्ति आत्मचिंतन नहीं करता। उसका वैचारिक मंथन केवल दैनिक जरूरत की वस्तुओं और उनके उपभोग की व्यवस्था बनाने तक सीमित रहता है। जहाँ जीवन में कठिनाई आई नहीं कि भविष्य की चिंता के विषय में सोच-सोचकर मनुष्य तन-मन से कमजोर होता जाता है।

संकट के समय में व्यक्ति जीवन संबंधी श्रेष्ठता का विचार करने लगता है। उसमें हर स्थिति का बहुकोणीय विश्लेषण करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। जीवन के प्रत्येक घटनाक्रम पर आत्ममंथन प्रारंभ हो जाता है। संकट के समय में व्यक्ति केवल वैचारिक स्तर पर श्रेष्ठ बने रहकर जीवन नहीं चला सकता। उसे खान-पान, वस्त्र, आवास आदि आवश्यक भौतिक वस्तुओं के लिए परिश्रम करना पड़ता है। सामान्य जीवन में अचानक आई विपदा से कमजोर पड़ा व्यक्ति नए सिरे से जीवन सँभालने के प्रति भावनात्मक रूप से तो आशावान रहता है, परंतु व्यावहारिक रूप से वह निराशा से घिरा होता है।

स्वयं पर अटल विश्वास ही सफलता का सर्वोपरि रहस्य है। स्वयं पर विश्वास न करना ही असफलता है। स्वयं की काबिलियत पर संदेह करना मानव की स्वाभाविक कमजोरियों में शुमार किया जाता है। मानव जीवन का यह अवगुण उसे अपने जीवन में किसी भी क्षेत्र में सफलता पाने की राह में सबसे बड़े अवरोध के रूप में काम करता है; क्योंकि हम खुद ही अपनी क्षमता के बारे में विश्वास नहीं करते हैं। कामयाबियों की यात्रा में हम बड़ी तेजी से आगे नहीं बढ़ पाते हैं।

ऐसी दशा में हमारे बढ़े हुए कदम सहसा ठहर जाते हैं और शिद्दत से देखे हुए सपनों का हम खुद ही गला घोंट देते हैं। जिस कार्य को हम कर रहे हैं या फिर करने की योजना बना रहे हैं और उसी के बारे में हमको यह दुविधा सता रही हो कि इस कार्य में हम सफल भी होंगे या नहीं तो फिर हम केवल अपने अमूल्य समय की ही बरबादी कर रहे होते हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि हमें अपने लक्ष्यों तथा सपनों के प्रति पूरी तरह से समर्पित तथा निष्ठावान होना चाहिए। मन में हमेशा यह अडिग विश्वास रखना चाहिए कि खुद में अंतर्निहित क्षमता के फलस्वरूप हम अपने प्रयास और प्रयोजन में अवश्य ही सफल होंगे।

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि आखिर हमारे जीवन में दुविधा उत्पन्न ही क्यों होती है? इस सत्य से इनकार कदाचित् आसान नहीं होगा कि दुविधाएँ या संशय; आत्मविश्वास में कमी के कारण उत्पन्न होते हैं। जब हमें यह लगता है कि हम जिस लक्ष्य की प्राप्ति की तरफ आगे बढ़ रहे हैं और उसमें सफल होना आसान नहीं है; क्योंकि हमारे अंदर उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनिवार्य योग्यता का अभाव है तो हमारे पैर उस राह पर डगमगाने लगते हैं व हमारा आत्मविश्वास कमजोर पड़ने लगता है, फिर हम उन सपनों को साकार करने की कोशिश तो करते हैं, किंतु उनके लिए पूरी तरह से समर्पित नहीं हो पाते हैं।

इस प्रकार हमारे संसाधन और बेशकीमती समय बिना किसी उपलब्धि के बरबाद हो जाते हैं। लिहाजा हम अपने जीवन का जो भी लक्ष्य एक बार निर्धारित कर लें तो फिर उसके बाद उसके प्राप्त होने के बारे में कभी भी मन में किसी संदेह या नकारात्मक विचार को जन्म नहीं दें। खुद की क्षमता में अटूट विश्वास रखें, फिर हमको सफल होने से कोई नहीं रोक सकता है, परंतु इसके लिए हमें सभी आवश्यक सूत्रों को आत्मसात् करना होगा।

यदि व्यक्ति की युवावस्था निकल गई हो तो उसे और ज्यादा परेशानियों का सामना करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति का आत्मविश्वास ही उसका सबसे बड़ा साथी होता है। किसी नए व जटिल लगने वाले कार्य को करने के लिए विचार, नीति और क्रियान्वयन की आवश्यकता तो होती ही है, पर वह भी कार्य की सफलता करने वाले के सतत आत्मविश्वास पर ही टिकी होती है।

कोई भी काम व्यावहारिक स्वरूप में आने से पहले एक विचार मात्र होता है। कर्त्ता का आत्मविश्वास ही कार्य की परिणति निर्धारित करता है। मृत्यु के निकट पहुँचा व्यक्ति भी जीवन के प्रति समुचित आत्मविश्वास के सहारे वापस जीवनमार्ग पर चलने लगता है। विचार का प्रभावमंडल विचारशक्ति के बजाय उसके लिए गठित आत्मविश्वास से अधिक बढ़ता है। यदि व्यक्ति अपने जीवन में आत्मविश्वास की शक्ति को पहचान ले तो उसे उसके लक्षित मार्ग पर पहुँचने से कोई भी नहीं डिगा सकता।

कोई मनुष्य चल रहा है, किंतु उसके चलने का यदि कोई लक्ष्य नहीं है तो उसके सारे प्रयास, उसका सारा श्रम व्यर्थ ही जाएँगे, इसलिए प्रत्येक मनुष्य का अपना एक जीवन-दर्शन होना ही चाहिए। इसके बिना प्रगति असंभव है। दूसरा आवश्यक तत्त्व है—दृढ़ आत्मविश्वास। 'मैं इस कार्य को करूँगा', 'मुझे निश्चय ही इस कार्य को करना है'—इस तरह का दृढ़ आत्मविश्वास ही मानव जीवन में सफलता का रहस्य है।

सफलता प्राप्त करने के लिए तीसरा तत्त्व है—संतुलित बोल। एक व्यक्ति जब जीवन के किसी भी क्षेत्र में अपने को अभिव्यक्त करता है, उसे अपनी वाणी पर नियंत्रण रखना चाहिए। इसी को कहते हैं सम्यक वाणी। चौथा तत्त्व है—आजीविका। एक अच्छे व्यक्ति को साफ-सुथरी और पवित्र आजीविका अर्जित करनी चाहिए। उसे अनैतिक तरीके से आजीविका अर्जित नहीं करनी चाहिए। अब पंचम तत्त्व है—सम्यक व्यायाम। हम जानते हैं कि बहुत से लोग अपने शरीर को मजबूत बनाने के लिए अनेक तरह के व्यायाम करते हैं, किंतु एक मानव का अस्तित्व सिर्फ शारीरिक नहीं है। मानवीय अस्तित्व शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक—तीनों है और हमें तीनों तत्त्वों का ध्यान रखना चाहिए।

जब हम कोई कार्य शुरू करते हैं तो हमें बहुत कुशलतापूर्वक और सुंदर तरीके से उसका समापन भी करना चाहिए। किसी भी कार्य को अपूर्ण अवस्था में नहीं छोड़ना चाहिए। कार्य का समापन हमेशा सुंदर होना चाहिए। हमें यह भी कभी नहीं भूलना चाहिए कि परमात्मा का स्मरण करना ही हमारा सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। उपरोक्त सभी तत्त्वों को ध्यान में रखते हुए मनुष्य यदि आगे बढ़े तो वह सफलता के शिखर पर पहुँच सकता है। ❑

फकीरचंद नाम का एक सेठ था। किसी संत ने उससे कहा था—''सेठ सबकी सहायता किया करो, प्रभु तुम्हारी सहायता करेंगे।'' तभी से सेठ सबकी यथासंभव सहायता करने लगा। एक बार सेठ जी को एक गाँव में जाना पड़ा। वहाँ के लोगों की सेठ जी बहुत सहायता करते थे। सेठ जी को आशा थी कि गाँव के लोग मेरी सहायता के बदले जरूर मेरी आवभगत करेंगे, पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

सेठ जी यह देखकर बहुत परेशान हुए। दैवयोग से वही संत सेठ के पास पुनः आए। सेठ को दुःखी देखकर संत ने कारण पूछा। सेठ जी ने पूरी बात बताई। तब संत बोले—''सेठ जी इनसान को निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए, फल की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। यही इनसान का सच्चा कर्त्तव्य है।'' संत की बात सुनकर सेठ जी का मन निर्मल हो गया। वे निष्काम भाव से परोपकार करने लगे।

अपने स्वास्थ्य का भी रखें ध्यान

स्वास्थ्य एक वरदान है, जो सुख-शांति का आधार है, आनंद का अक्षय स्रोत है। जीवन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे पुरुषार्थ चतुष्टय इसी के आधार पर संभव होते हैं। यदि व्यक्ति स्वस्थ नहीं है तो जीवन की गाड़ी लड़खड़ा जाती है। एक स्वस्थ व्यक्ति ही सम्यक रूप में आर्थिक, सामाजिक, नैतिक कर्त्तव्यों का पालन कर पाता है। एक रोगी चाहते हुए भी अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह नहीं कर पाता। रोग की गंभीर अवस्था में तो वह एक जीवित लाश की तरह जीवन को किसी तरह ढोने के लिए विवश होता है।

एक रोगी का जीवन अभिशाप से कम नहीं होता। वह कई मानों में दूसरों पर आश्रित होता है। एक परावलंबी जीवन जीने के लिए विवश-बाध्य होता है। वह एक तनावपूर्ण जीवन जीता है। शिष्टाचार एवं मानवीयता के नाते उसका भरण-पोषण होता रहता हो, लेकिन वह एक स्वाभाविक एवं गौरवमयी स्थिति में नहीं होता। दूसरों पर अपने अनावश्यक दायित्व के बोझ की ग्लानि तो पहले ही सर पर सवार रहती है साथ ही परिचर्या करने वाले भी एक समय के बाद फिर उकताने लगते हैं व किसी तरह से अपना फर्ज निभाते देखे जाते हैं।

परिवार एवं समाज पर आर्थिक संकट का दबाव इसके चलते अलग से पड़ता है, जिसका वहन करना सबके लिए संभव नहीं हो पाता। रुग्ण आबादी एक प्रगतिशील राष्ट्र के लिए भी वांछनीय स्थिति नहीं होती। जिस अर्थ एवं पुरुषार्थ का नियोजन राष्ट्ररूपी भवन के निर्माण में किया जाना था, वह खाई पाटने में खप जाता है। ऐसे में एक बीमार व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी से नहीं बच सकता, जिन पर वह फुरसत के समय में विचार कर सकता है।

जाने-अनजाने में कोई बीमार पड़ गया, यह अलग बात है, परंतु अपनी बिगड़ी आदतों एवं जीवनशैली के कारण यदि वह बीमारियों को न्योता दे रहा है तो उसे सजग-सावधान रहने की आवश्यकता है। एक जिम्मेदार नागरिक होने के नाते उसे अपने स्वास्थ्य का यथासंभव ध्यान रखना भी चाहिए और गंभीरता एवं ईमानदारीपूर्वक अपने रोगों के कारण व जड़ों पर विचार करना चाहिए व इनको दुरुस्त करने के लिए समझदारी भरे एवं साहसपूर्ण कदम उठाने चाहिए। इसे भी उसकी स्थिति को देखते हुए धर्मधारणा, कर्त्तव्यपालन, सेवा-साधना से कम नहीं माना जाएगा।

वास्तव में स्वास्थ्य एक ईश्वरप्रदत्त उपहार है, जीवन की एक स्वाभाविक स्थिति है। मनुष्य के अतिरिक्त इस पृथ्वी पर हर प्राणी स्वस्थ पैदा होता है, जीवनभर नीरोग रहता है और स्वस्थ अवस्था में ही शरीर छोड़ता है। ऐसा इस कारण संभव होता है, क्योंकि वह प्रकृति की प्रेरणा से जीवनयापन करता है। उसका आहार-विहार सब प्रकृति के नियमानुसार होते हैं। एक इनसान ही इसका अपवाद है, जो नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त रहता है और आएदिन रोगों का रोना रोता रहता है। इसी के लिए तमाम तरह के अस्पतालों, चिकित्सापद्धतियों एवं प्रणालियों की व्यवस्था की गई है। एक पूरा तंत्र इसी निमित्त खड़ा है, जिसमें भारी मानव संसाधन, धन एवं ऊर्जा का नियोजन होता रहता है।

बीमारी एक स्वाभाविक स्थिति नहीं है। इसका अप्राकृतिक जीवन से सीधा संबंध है; जबकि स्वास्थ्य का अभिप्राय प्रकृति के साथ तारतम्य भरे जीवन से है। स्वास्थ्य का व्यक्ति की आदतों व दिनचर्या से भी सीधा संबंध जुड़ा हुआ है। यदि हम इन पर ध्यान दें और जीवन के सरल-सामान्य सूत्रों का अनुसरण करें तो बहुत सीमा तक स्वस्थ-नीरोग जीवन जी सकते हैं।

दिनचर्या का सुव्यवस्थित होना स्वस्थ जीवन का प्राथमिक आधार है। समय पर शयन एवं जागरण इसका महत्त्वपूर्ण पहलू रहता है। समय पर शयन से प्रातः समय पर जागरण संभव होता है और सुबह की प्राणवायु में दिनचर्या का बलवर्द्धक एवं स्फूर्तिदायक शुभारंभ संभव होता है। इसके साथ स्वस्थ एवं प्राकृतिक खान-पान नीरोग जीवन का प्रमुख आधार है। समय पर यथासंभव पौष्टिक आहार लें तथा बीच-बीच में स्वाद के वशीभूत होकर कुछ भी न

खाएँ। यह एक तो भूख को चौपट कर देता है और दूसरा पेट के तमाम रोगों का कारण बनता है। आहार के साथ पर्याप्त मात्रा में जल लें। जल के प्रति लापरवाही कई मानों में भारी पड़ती है। इसके चलते शरीर के अवशिष्ट पदार्थों का निष्कासन नहीं हो पाता है और शरीर में जमे विषाक्त तत्त्व एवं विजातीय पदार्थ कई तरह के रोगों को आमंत्रण देते हैं।

आहार के साथ शारीरिक श्रम एवं व्यायाम का अनुपान शरीर को तंदुरुस्त रखता है। इसके साथ उचित नींद एवं विश्राम का अपना महत्त्व है, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। नीरोग जीवन के संदर्भ में इंद्रिय संयम की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कामुकता जीवन के सार तत्त्व को निचोड़ देती है और असंयमित जीवन व्यक्ति को दुर्बलता एवं रुग्णता की ओर ले जाता है। ऐसे में स्वस्थ जीवन के सारे प्रयास धरे रह जाते हैं। इसके साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए सादा जीवन-उच्च विचार जीवन को सुखी-स्वस्थ रखने का ठोस मानसिक आधार तैयार करता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्राकृतिक जीवन स्वस्थ एवं नीरोग जीवन का प्रमुख आधार है, जिसको आज के दूषित वातावरण में जितना संभव हो सके—उतना अपनाने का प्रयास करना चाहिए। अपनी दिनचर्या एवं जीवनशैली में इन सूत्रों का ध्यान रखते हुए एक स्वस्थ एवं सुखी जीवन की नींव रखी जा सकती है। ❑

सिख गुरु अर्जुनदेव जी की पत्नी माता गंगा देवी निस्संतान होने के कारण बहुत अशांत रहती थीं। एक दिन पत्नी को बहुत दुःखी देखकर अर्जुनदेव जी ने उन्हें ब्रह्मज्ञानी संत बुड़ढा जी के पास जाकर आशीर्वाद लेने की सलाह दी। माता गंगा देवी ने जाने का निश्चय कर लिया। उन्होंने भाँति-भाँति के पकवान बनाए और रथ में बैठकर लाव-लश्कर के साथ गईं।

उन्हें देखते ही बाबा समाधिस्थ हो गए, बहुत प्रतीक्षा के बाद भी जब उनकी समाधि नहीं खुली तो माता गंगा देवी निराश होकर लौट आईं और पति को पूरी बात बताई। तब अर्जुनदेव जी बोले—"वे पूर्ण ब्रह्मज्ञानी हैं। उनका आशीर्वाद ऐसे नहीं मिलेगा। तुम्हें पूर्ण श्रद्धा, सादगी के साथ नंगे पाँव पैदल चलकर जाना होगा।"

गंगा देवी ने सहमति जताई और कहा—"यह ठीक है।" तब अगले दिन माता ने अपने हाथ से रोटियाँ बनाई, बरतन में लस्सी ली और इन्हें अपने सिर पर उठाकर नंगे पाँव चली गईं। जैसे ही वे उनके डेरे के करीब पहुँचीं; स्वयं बाबा बुड़ढा उनको लेने आगे चले आए और बोले—"माता मुझे आपका ही इंतजार था। मुझे बहुत भूख लगी है। मुझे रोटियाँ खिलाएँ।" तृप्त हो जाने के बाद बाबा ने आशीर्वाद दिया। समय आने पर माता गंगा देवी ने एक महान पुत्र को जन्म दिया, जो बड़ा होकर सिख धर्म का छठवाँ गुरु—गुरु हरगोविंद सिंह के नाम से विख्यात हुआ।

धर्म ही है जीवन का आधार

मनुष्य विधाता की सर्वश्रेष्ठ रचना है। मनुष्य विधाता की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति भी है। इस तथ्य को भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवत (11-7-22) में इस तरह कहा है—

बह्व्या सन्ति पुरः स्रष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया॥

अर्थात—मैंने अनेक प्रकार के शरीरों का निर्माण किया—किंतु मुझे सबसे अधिक प्रिय यह मनुष्य शरीर है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है—

पुरुषौ वै प्रजापतेन्नैदिष्ठम्।

अर्थात नर ही नारायण के सर्वाधिक समीप है। बाइबिल (बुक ऑफ जेनेसिस) में कहा गया है कि इस संसार में मनुष्य ही परमसत्ता का साकार रूप है। वहीं कुरान की आयतें (सुरा 2, 35.35) कहती हैं कि मनुष्य पृथ्वी पर अल्लाह का प्रतिनिधि है तथा उसे अल्लाह ने श्रेष्ठ रूप प्रदान किया है।

भारतीय दर्शन, भारतीय चिंतन, भारतीय संस्कृति के अनुसार तो चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद मनुष्य शरीर प्राप्त होता है। अस्तु इतना दुर्लभ मनुष्य शरीर, मनुष्य जीवन को यदि आलस्य में, प्रमाद में, भोग में गँवा दिया तो यह इस अवसर की सबसे बड़ी हानि है। मानव शरीर निस्संदेह अजर, अमर नहीं है, पर मनुष्य शरीर में परमात्मा के अंश के रूप में विद्यमान जीवात्मा तो अजर, अमर, अविनाशी है ही। हमें शरीर में परमात्मा के अंशरूप, बीजरूप में मौजूद जीवात्मा को ही ईश्वरीयरूप में, परमात्मारूप में, अभिव्यक्त करना है और शाश्वत सुख, परम सुख को प्राप्त करना है।

यही मानव जीवन का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है, कर्त्तव्य है। इस अस्थिर एवं अनित्य मानव देह को पाकर इसके द्वारा नित्य, शाश्वत तत्त्व को जानने का प्रयास कर आत्मकल्याण को प्राप्त करना ही मानवीय दायित्व है। यही मनुष्य जन्म का प्रमुख कर्त्तव्य भी है। विभिन्न धर्मों में आत्मकल्याण के, ईश्वरप्राप्ति के विभिन्न मार्ग बताए गए हैं। श्रुति कहती है कि यदि मनुष्य स्वयं को सिर्फ देह मानता है, शरीर मानता है तो शरीरमात्र को सजाने, सँवारने एवं इंद्रियजन्य सुखों की प्राप्ति के पीछे ही उसकी सारी जीवनयात्रा सिमटकर रह जाती है। वह देह के लिए जीता है, शरीर के लिए जीता है, इंद्रियसुख की प्राप्ति के लिए ही जीता है; क्योंकि वह स्वयं को शरीरमात्र, देहमात्र मानता है और शरीरसुख, इंद्रियसुख, विषयसुख को ही सच्चा सुख मानता है।

इस प्रकार ऐंद्रिक जीवन, दैहिक जीवन, भौतिक जीवन जीकर ही वह इस संसार से चला जाता है। चूँकि उसने देह को ही सर्वोपरि माना, इसलिए उसने आत्मा की मुक्ति, आत्मोद्धार, आत्मकल्याण के लिए कोई प्रयास, पुरुषार्थ किया ही नहीं। फलस्वरूप उसकी आत्मा उसके द्वारा किए गए विभिन्न प्रकार के शुभ-अशुभ, पाप-पुण्यादि कर्मों के संस्काररूप बंधन में बँधी ही रही और बार-बार जन्म लेती रही, नए-नए शरीर धारण करती रही, पर मुक्त नहीं हो पाई; क्योंकि उसकी मुक्ति के उपाय ही नहीं किए गए, पुरुषार्थ ही नहीं किए गए; इसलिए अधिकांश लोग दैहिक जीवन, भौतिक जीवन, लौकिक जीवन जीकर ही इस संसार से विदा हो जाते हैं। हम इस लौकिक जगत में जन्म लेते हैं, भौतिक जगत में जन्म लेते हैं, भौतिक शरीर में जन्म लेते हैं; अस्तु लौकिक जीवन, भौतिक जीवन मनुष्य जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू तो है, पर यह लौकिक, भौतिक पहलू ही पूर्ण जीवन, संपूर्ण जीवन नहीं है।

भौतिक सुख ही शाश्वत सुख नहीं है। इंद्रियजन्य सुख क्षणिक हैं, क्षणभंगुर हैं; क्योंकि इनसे इंद्रियों को स्थायी तृप्ति नहीं मिलती, परंतु आत्मा से निस्सृत सुख शाश्वत सुख है। इसे पाकर जीवात्मा को परम आनंद, ब्राह्मी आनंद की प्राप्ति होती है और आत्मा सभी प्रकार के कर्मबंधनों से मुक्त हो जाती है और फिर जीवात्मा को जीवन-मरण के चक्रव्यूह से भी मुक्ति मिल जाती है, इसलिए भारतीय ऋषियों ने भौतिक जीवन के साथ-साथ आत्मिक जीवन, आध्यात्मिक जीवन जीने की महत्ता, आवश्यकता पर बहुत अधिक बल दिया है। भौतिक और आध्यात्मिक जीवन में संतुलन आवश्यक है।

इसमें से किसी भी एक की उपेक्षा हमारे जीवन को अपूर्ण बना देती है। भौतिक जीवन एकांगी जीवन है। यह अपूर्ण जीवन है, पर आध्यात्मिक जीवन, आत्मिक जीवन से हमारा जीवन पूर्ण बनता है, संपूर्ण बनता है; इसलिए पूर्ण जीवन, संपूर्ण जीवन, आनंदपूर्ण जीवन जीने के लिए भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के रूप में पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति पर बल दिया गया है।

पुरुषार्थ चतुष्टय भौतिक जीवन व आत्मिक जीवन, आध्यात्मिक जीवन का अद्‌भुत संगम है। इसमें अर्थ एवं काम के रूप में भौतिक जीवन को महत्त्व दिया गया है, वहीं धर्म और मोक्ष के रूप में आत्मिक जीवन व आध्यात्मिक जीवन को महत्त्व दिया गया है, पर धर्म सिर्फ आत्मिक, आध्यात्मिक जीवन के लिए ही नहीं, बल्कि सुखी व सफल भौतिक जीवन के लिए भी अनिवार्य है। धर्म और मोक्ष की उपेक्षा किए जाने से ही आज समाज में नफरत, घृणा, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, अनाचार, हिंसा आदि व्यापक रूप से संव्याप्त हैं। मनुष्य आंतरिक रूप से अशांत है, बेचैन है, व्याकुल है। यह व्यक्ति व समाज, दोनों के लिए अशुभ है।

धर्म हमें अपने मानवीय स्वभाव में रहना सिखाता है, मानवीय मर्यादा में रहना सिखाता है। यह उचित, अनुचित, शुभ-अशुभ, अच्छे-बुरे का भेद कर उचित व्यवहार, शुभ व्यवहार, अच्छे व्यवहार व स्वभाव में रहने को प्रेरित करता है। यह अधर्म व अनैतिक क्रियाकलापों से दूर रहने की प्रेरणा देता है। यह हमें अर्थ एवं काम जैसे भौतिक पुरुषार्थ को नैतिक एवं उचित तरीके से प्राप्त करने की प्रेरणा देता है। धर्म हमारी अशुभ व कलुषित भावनाओं तथा अनियंत्रित, आर्थिक अभिलाषाओं पर अंकुश व नियंत्रण रखकर जीवन को सरल, शांत और आनंदमय बनाए रखने के लिए आदेशित करता है। धर्म को जीवन के प्रारंभ से ही धारण कर लेने से हमारे अन्य तीन पुरुषार्थ भी सिद्ध हो जाते हैं। धर्म हमारे जीवन का पथ-प्रदर्शक है, जो हमें कोई भी शुभ-अशुभ, अच्छे-बुरे, पाप-पुण्य आदि कर्मों के शुभ व दुष्परिणाम की जानकारी देता रहता है।

ईश्वर सर्वव्यापी है, न्यायकारी है। वह हमारे द्वारा किए जाने वाले, किए जा रहे अच्छे-बुरे कर्मों का साक्षी है। कर्मफल विधान के द्वारा हमें हमारे कर्मों का फल मिलना अवश्यंभावी है। बुरे कर्म करने से हमें आत्मग्लानि होती है। पुण्यकर्म करने से हमें आत्मसुख, आत्मसंतोष प्राप्त होता है। ये सारी प्रेरणाएँ हमें धर्म से ही तो मिलती हैं। हम जहाँ भी हैं, जिस रूप में हैं, जिस कार्य में लगे हैं, वहाँ हम अपने हर कर्म को, कर्त्तव्य को पूरी ईमानदारी से करें। यह सीख हमें धर्म से ही तो मिलती है।

हम शिक्षक हैं, चिकित्सक हैं, व्यापारी हैं, किसान हैं, विद्यार्थी हैं, माली हैं, अभियंता हैं, वैज्ञानिक हैं हम चाहे जिस पेशे में हैं, कर्म में हैं, उसमें हम ईमानदारीपूर्वक अपने श्रम का, समय का, प्रतिभा का सुनियोजन करें; जिससे हमारे साथ-साथ परिवार, समाज, राष्ट्र व संपूर्ण विश्व का कल्याण हो सके। ये दिव्य प्रेरणाएँ हमें धर्म से ही मिलती हैं। धर्म किसी पंथ या संप्रदाय का नाम नहीं है।

धर्म अँगरेजी के रिलीजन शब्द का हिंदी रूपांतरण भी नहीं है। धर्म बहुत ही व्यापक शब्द है और इसका अर्थ भी व्यापक है। धर्म शब्द का उद्‌भव 'धृ' धातु से हुआ है, जिसका अर्थ है—धारण करना। अस्तु जो धारण करने योग्य है, वही धर्म है। जैसे जड़ के सहारे पूरा वृक्ष खड़ा होता है, वैसे ही धर्म के सहारे ही हमारा जीवन शीर्ष तक पहुँचता है, अपने सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति करता है। धर्म हमारा मानवीय स्वभाव है, कर्त्तव्य है।

हर वस्तु का, प्राणी का अपना धर्म होता है, स्वभाव होता है। चंद्रमा का स्वभाव उसकी चाँदनी में, शीतलता में, प्रकाश में दिखता है तो सूर्य का स्वभाव उसकी ऊष्मा व तपन में दिखता है। जल का स्वभाव बहना है। वायु का स्वभाव बहना है, अग्नि में ऊष्मा है और वही उसका धर्म है। वैसे ही मनुष्य में मनुष्यता का होना, मानवीय गुणों का होना ही उसका धर्म है।

मनुस्मृति के अनुसार धैर्य, क्षमा, दम(कलुषित भावनाओं पर नियंत्रण), अस्तेय(चोरी न करना), शौच (आंतरिक एवं बाह्य स्वच्छता), इंद्रिय निग्रह (इंद्रियों को नियंत्रित करना), धी (बुद्धि और ज्ञान का प्रयोग), विद्या(अधिक-से-अधिक ज्ञान की पिपासा), सत्य (मन, वचन, कर्म से सत्य का पालन), अक्रोध(क्रोध न करना)—ये मानवधर्म के दस लक्षण हैं। इन गुणों को धारण करना ही धर्म को धारण करना है।

जब व्यक्ति इन गुणों को धारण कर लेता है, तब वह स्वभावतः ही अपने स्वधर्म का, कर्त्तव्य का पालन बड़ी ही निष्ठा व ईमानदारी से करने लग जाता है। वह अर्थ जैसे पुरुषार्थ की प्राप्ति करते समय भी धर्म का ख्याल रखता है।

उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक तरीकों का ख्याल रखता है। वह काम अर्थात अपनी कामनाओं, इच्छाओं की पूर्ति में भी धर्म का पालन करता है। वह अपनी इच्छापूर्ति, कामनापूर्ति के लिए अनुचित या अनैतिक तरीके नहीं अपनाता।

इस प्रकार जीवन के हर कर्म को धर्म की दृष्टि से करते-करते व्यक्ति का जीवन नैसर्गिक रूप से धर्ममय हो जाता है। उसका चित्त पवित्र होने लगता है और वह मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। उसके जीवन में सभी प्रकार के मोह का क्षय हो जाता है। वह मुक्त हो जाता है। वह भवबंधनों से मुक्त हो जाता है। वह जीवन-मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है और इस प्रकार लौकिक और पारलौकिक, भौतिक और आत्मिक—दोनों ही दृष्टि से व्यक्ति लाभ में रहता है। वह लौकिक व पारलौकिक, दोनों जीवनों में आनंद को प्राप्त करता है। निस्संदेह धर्म ही मानव जीवन का आधार है और जिस व्यक्ति के जीवन में यह आधार जितना सशक्त है, वह उतना ही समर्थ है, सुखी है। इसे धारण कर ही हम अपने जीवन को आनंद से परिपूर्ण बना सकते हैं। ❑

एक बार धर्म और अधर्म दोनों अपने-अपने रथ में बैठकर कहीं जा रहे थे। तभी उन दोनों के रथ एक ही राह में आमने-सामने खड़े हो गए। अब कौन दूसरे के लिए रास्ता छोड़े, इस पर उनमें विवाद छिड़ गया। धर्म ने अधर्म से कहा—''भाई! तू अधर्म है, मैं धर्म हूँ। मेरा मार्ग ठीक होता है। मैं पुण्यदायक सभी के द्वारा पूजित व प्रशंसित हूँ, इसलिए मार्ग दिए जाने योग्य मैं ही कहा जा सकता हूँ।''

अधर्म बोला—''हे धर्म! मैं अधर्म हूँ और इसलिए मार्ग दिए जाने योग्य मैं ही हूँ।'' अधर्म आगे बोला—''हे धर्म! मैं अधर्म हूँ और निर्भयी व बलवान हूँ। मैंने आज तक कभी भी किसी को मार्ग नहीं दिया। यह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। मैं तुझे मार्ग कैसे दे सकता हूँ?''

धर्म ने फिर समझाया—''देखो भाई! लोक में पहले धर्म का प्रादुर्भाव हुआ, बाद में अधर्म का। धर्म ही ज्येष्ठ है, धर्म ही श्रेष्ठ है, धर्म ही सनातन है। इसलिए हे कनिष्ठ! तू मुझ ज्येष्ठ के लिए मार्ग छोड़ दे।'' इस पर अधर्म बोला—''ये सब कोई उचित कारण नही हैं आओ, युद्ध करें। जिसकी जीत हो, रास्ता उसी का।'' फिर धर्म ने समझाने की कोशिश की—''मैं चारों दिशाओं में फैला हुआ महाबलवान, यशस्वी व अतुलनीय गुणवान हूँ। तू मुझसे कैसे जीतेगा?''

अधर्म बोला—''लोहे से सोना पिघलता है, सोने से लोहा नहीं। आज अधर्म ही धर्म को पराजित करेगा।'' यह सुनकर धर्म बड़ा दुःखी हो गया। धर्म ने कहा—''मैं युद्ध नहीं करना चाहता। मैं तेरे वचनों के लिए तुझे क्षमा करते हुए जाने का मार्ग देता हूँ।'' सज्जन लोगों की यही पहचान होती है।

चेतना की शिखर यात्रा —219

विडंबना और तथ्य

विगत अंक में आपने पढ़ा कि सरकार द्वारा जनता के प्रति बरती गई आपातकाल की ज्यादतियों के विरोधी राजनेताओं में सशक्त विपक्ष के निर्माण के लिए बड़े समाजसेवी संगठनों के समर्थन को जुटाने के प्रयास चल रहे थे। इसी क्रम में ओडिशा प्रांत की पूर्व मुख्यमंत्री श्रीमती नंदिनी सत्पथी गायत्री परिवार के नैतिक सहयोग को प्राप्त किए जाने के प्रस्ताव को लेकर कांग्रेस के बड़े राजनेता हेमवती नंदन बहुगुणा से मिलने आईं, परंतु इसे असंभव बताते हुए बहुगुणा जी ने पूज्य गुरुदेव की दृष्टि में धर्मतंत्र एवं राजतंत्र के अपने अलग स्थान एवं विशेष भूमिका को उनके समक्ष सुस्पष्ट किया। पूज्यवर से हुई भेंट का वृत्तांत सुनाते हुए बहुगुणा जी ने उन्हीं की प्रेरणा से सफल हुए कार्यों का भी उल्लेख किया, जिसमें धर्म भावना के निर्वहन के प्रतिफल के रूप में बदरीनाथ मंदिर के जीर्णोद्धार व स्वयं उनकी राष्ट्रीय छवि में आए बदलाव भी शामिल थे। सन् 1977 के आम चुनावों की कड़ी में कुछ संन्यासियों की जीत हुई, जिनमें से गायत्री परिवार से जुड़े कुछ लोग भी विजयी हुए। राजनीतिक उत्तरदायित्वों में सफलता का आशीर्वाद पाने की मंशा से पहुँचे इन युवा राजनेताओं को पूज्यवर ने यही संदेश दिया कि जनसेवा के इस सुअवसर को युगधर्म मानकर निभाएँ। वहीं उत्तर प्रदेश से चुनकर आए एक संन्यासी विधायक भी उन्हीं दिनों सप्त सरोवर के निकट किसी आश्रम में ठहरे थे, जिन्हें अपनी संध्या की उपासना में हुए दिव्य अनुभव ने पूज्यवर के दर्शन-प्रणाम के लिए व्यग्र कर दिया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ...

आंध्र प्रदेश की राजधानी से कुछ दूर कुंबलगुडु से आए रवि वर्मन शांतिकुंज परिसर में आते ही बिलख उठे। अपने गृहनगर से यहाँ पहुँचने तक उन्होंने अपने आप को सँभाल रखा था और अब रहा नहीं जा सका। उन्होंने कार्यालय में कदम रखा और अपना परिचय देने के तुरंत बाद कहना शुरू किया कि मुझे गुरुदेव से मिलवा दीजिए। मेरा स्वास्थ्य बुरी तरह जर्जर हो गया है। परिवार में दो लड़कियाँ हैं, पत्नी है और बूढ़ी माँ है। डॉक्टरों ने मुझे जवाब दे दिया है। गुरुदेव ही मुझे बचा सकते हैं। कार्यालय में उपस्थित परिजन ने कहा कि गुरुदेव से भेंट हो जाएगी। आप निश्चिंत रहें। इसके बाद उन्होंने रवि वर्मन की समस्या पूछी, घर-परिवार का कुशल जाना और ठहरने की व्यवस्था की। रवि वर्मन की दोनों किडनियाँ खराब हो गई थीं। डॉक्टरों ने सलाह दी थी कि एक किडनी निकलवाकर उसकी जगह नई प्रत्यारोपित करा लें। इसके लिए आर्थिक साधन चाहिए थे और उनसे भी बढ़कर ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो गुरदा दान कर सके। इसके लिए अपने संपर्क-क्षेत्र में नजर दौड़ाते या अंगदान की व्यवस्था करने वाली एजेंसियों से संपर्क करना था। संपर्क शुरू किया ही था कि दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध संत के अनुयायियों ने उन्हें अपने गुरु की शरण में आने के लिए कहा। उन संत के बारे में कहा गया कि वे फूल की पंखड़ी से भी ऑपरेशन कर सकते हैं और कई बार तो इसकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती। पीड़ित अंग का सिर्फ स्पर्श कर या आशीर्वाद देकर भी वे ठीक कर सकते हैं। अनुयायियों ने उन संत की महिमा इस तरह बखान की कि रवि वर्मन ने इलाज या ऑपरेशन के चक्कर में पड़ने के बजाय उन संत के पास जाना ही ठीक समझा और वे गए भी।

जिस दिन उन संत के दर्शन हुए, उस दिन 140 और लोग भी मौजूद थे। प्रत्येक किसी-न-किसी रोग से पीड़ित। संत भव्य राजसी अंदाज में शिष्यों के बीच आए और पीड़ितों का स्पर्श किया। कुछ को भस्म का प्रसाद दिया और कुछ को आशीर्वाद मुद्रा में हाथ उठाकर अभिवादन किया। रवि वर्मन को उन्होंने अगले दिन दोपहर बाद अपने पास में

बुलाया था। वहाँ जाने पर किन्हीं उपकरणों से, जो रवि वर्मन के बताए विवरण के अनुसार पूजा-पाठ के काम आते होंगे, ऑपरेशन जैसा कुछ कृत्य किया। कृत्य इसलिए कि वह पेट और कमर के निचले हिस्से पर स्पर्श तथा मार्जन-प्रक्रिया ही थी। उसे चिकित्सा का नाम दिया गया था। (रवि वर्मन ने उन संत का नाम तो नहीं बताया, लेकिन उनसे बातचीत कर रहे शांतिकुंज के कार्यकर्त्ता ने समझ लिया) उन संत का हुलिया, व्यवहार और लक्षण पुट्टपर्ती के सत्य सांई बाबा जैसा था। कार्यकर्त्ता ने उनका नाम लिया तो रवि वर्मन ने तपाक से मना कर दिया। इस बातचीत के बाद रवि वर्मन को ठहरा दिया गया। उसी दिन तीसरे पहर दो बजे बाद गुरुदेव से भेंट हुई। शिविर चल रहा था और रवि की भेंट शिविरार्थियों के बाद ही हुई थी। गुरुदेव से करीब दस मिनट तक उसने अपनी व्यथा कही और वहाँ से लौटे तो बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने अपने आप बताया कि गुरुदेव ने उपचार कराने के लिए कहा है। किसी चमत्कार की आशा नहीं करने और भगवान का नाम लेते हुए उनका काम करने से सब कुछ ठीक हो जाने की बात कही है।

रवि वर्मन अगले दिन वापस अपने निवास स्थान पर चले गए। कोई महीने भर बाद संदेश आया कि उपचार से आराम हो रहा है। परीक्षण के बाद डॉक्टरों ने कहा है कि एक किडनी पूरी तरह बेकार हो गई है। दूसरी में तीव्र संक्रमण है, लेकिन ऐसा नहीं कि उसे बदले बिना काम ही नहीं चले। यथोचित चिकित्सा से संक्रमण कम किया जा सकता है। यह सूचना देते हुए रवि वर्मन ने एक बार फिर शांतिकुंज आने की इच्छा जताई थी। जिन कार्यकर्त्ता से रवि वर्मन शांतिकुंज आते ही मिले थे; उन्हें भी अलग से पत्र लिखा। पत्र में उन्होंने लिखा कि गुरुदेव के आशीर्वाद से स्वास्थ्य सुधर रहा है। उन्होंने आशीष देते हुए कहा था कि रोग, बीमारियाँ हो जाएँ तो किसी चमत्कार से ठीक होने की उम्मीद नहीं करनी चाहिए। उसका उपचार कराना चाहिए। संत महापुरुषों की, बड़ों की और माता-पिता की दुआएँ काम तो आती हैं, लेकिन बादलों से बरसते पानी की तरह हैं। धरती पर कुछ बीज पड़े हों तो उस पानी को पाकर वे अंकुरित हो जाते हैं, वरना वह बेकार चला जाता है। पत्र में रवि वर्मन ने अपने और अनुभव भी लिखे थे।

उन दिनों पत्र-पत्रिकाओं में खासी बहस छिड़ी हुई थी। बहस का विषय था कि चमत्कार, वरदान से सचमुच रोग-बीमारियाँ ठीक हो जाती हैं या इस बारे में किए गए दावे लोगों को बरगलाने-फुसलाने के लिए होते हैं। इस बहस के केंद्र में पुट्टपर्ती के सत्य सांई बाबा थे। मुंबई से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक अखबार 'ब्लिट्ज' ने सत्य सांई बाबा के बारे में दसियों अंकों तक चलने वाली लेखमाला प्रकाशित की। बहस कुछ इस तरह प्रकाशित हुई कि उसमें सत्य सांई बाबा को करामाती-चमत्कारी भी बताया गया और दूसरे पक्ष से उनकी आलोचना भी की गई। विवाद की शुरुआत 1976 में गुरुपूर्णिमा पर सत्य सांई बाबा की इस घोषणा से हुई थी कि वे 'शिव' और 'शक्ति' दोनों के अवतार हैं। यह उनका दूसरा जन्म या अवतार है। अपनी लीलाएँ संवरण करने के बाद वे प्रेम सांई के नाम से एक अवतार और लेंगे।

सत्य सांई बाबा ने कहा था कि अपने इस दूसरे अवतार के रूप में वे लौकिक-अलौकिक, सभी तरह की शक्तियों और सिद्धियों का उपयोग करेंगे। बाबा के इन दावों से धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में हलचल मच गई थी। उन दिनों देश में आपातकाल लागू था। खबरों की दुनिया में सन्नाटा छाया हुआ था, इसलिए सत्य सांई बाबा को लेकर उठा यह विवाद अरसे तक बना रहा। सत्य सांई बाबा की चमत्कारी क्षमताओं से प्रभावित और आगे चलकर अपने आप को ठगा-सा महसूस करने वाले कई लोग उन दिनों शांतिकुंज आते थे। वे अपनी आपबीती गुरुदेव से मुलाकात के समय स्वयं कहते अथवा पत्र लिखकर उनके सामने भी रख देते। गुरुदेव उनके अनुभवों की न पुष्टि करते और न ही खंडन। सुनकर चुप रह जाते। कभी-कभार इतना भर कह देते कि भगवान की बनाई यह दुनिया अपने आप में सबसे बड़ा चमत्कार है। इसी में परमात्मा को ढूँढ़ो और पाओ। गुरुदेव के इस उत्तर से बहुत से साधकों को संतोष नहीं होता। वे अपना आग्रह दोहराते, लेकिन गुरुदेव इस बारे में स्वयं ही खोज करने और अपना समाधान तलाशने की राय देते।

अपने ही कर्मों का साथ

शांतिकुंज के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता और गायत्री तपोभूमि की स्थापना के समय दीक्षा प्राप्त शिष्य बद्री प्रसाद पहाड़िया ने भी सत्य सांई बाबा के संबंध में उठ रही चर्चाओं को सुना था। वे यद्यपि अखबार और पत्र-पत्रिकाओं अथवा गुरुदेव के साहित्य से इतर सामग्री में रुचि नहीं रखते थे, लेकिन

अखबारों में छपे चमत्कारी वर्णन उनकी जानकारी में आ चुके थे। उनकी आस्था थी कि गुरुदेव से बढ़कर न तो कोई संत है और न ही विद्वान। सत्य सांई बाबा के चमत्कारों की कहानियाँ उन्होंने भी पढ़ी और सुनीं। रोज की तरह एक सुबह वे प्रतिदिन की भाँति गुरुदेव को प्रणाम करने गए। इस बार वे तय करके गए थे कि इन चमत्कारों के बारे में जरूर पूछेंगे। अगर इन चमत्कारों की महिमा है या इनसे अध्यात्म और साधना की महत्ता सिद्ध होती है तो हम लोगों को यानी गायत्री परिवार के सदस्यों को, गुरुदेव के शिष्यों को चमत्कारिक अनुभव क्यों नहीं होते? यह जिज्ञासा मन में लेकर गए पहाड़िया जी ने गुरुदेव को प्रणाम किया और हमेशा की भाँति एक तरफ खड़े हो गए। वे शांतिकुंज की व्यवस्था में हाथ बँटाते थे, उनके जिम्मे दैनंदिन आवश्यक सामग्रियों के प्रबंध का एक महत्त्वपूर्ण कार्य था। सुबह प्रणाम के समय वे दिन की योजनाओं के बारे में गुरुदेव को बताते। इस बार भी लगा कि एक तरफ खड़े हो जाने का उद्देश्य आज की दिनचर्या के बारे में बताना था, लेकिन वे कुछ पल चुपचाप खड़े रहे। कुछ क्षण इसी मुद्रा में खड़े रहकर उन्होंने कहा—"साहब इन दिनों सत्य सांई बाबा का बड़ा नाम हो रहा है। लोग उनकी सिद्ध अवस्था और चमत्कारों के दीवाने हुए जा रहे हैं।"

पहाड़िया जी के कहने की देर थी। वे चुप हुए ही थे कि गुरुदेव ने पूछ लिया—"तुम भी सिद्धियों के दीवाने हो गए हो क्या?" पहाड़िया जी को इस प्रतिप्रश्न की उम्मीद नहीं थी। वे सोच रहे थे कि गुरुदेव इस बारे में कुछ कहेंगे, जो उन दिनों चल रही लहर को समझने में मदद करेगा। उनका समाधान होगा। गुरुदेव के कथन ने उनकी मन:स्थिति को जैसे उलट-पुलट दिया। उनके मुँह से सिर्फ इतना ही निकला—"हम किसी से प्रभावित कैसे हो सकते हैं साहब।"

गुरुदेव ने कहा—"फिर क्यों परेशान होते हो? सिद्धि-चमत्कार आसमान से चमकने वाली बिजली और गरजने वाले बादलों की तरह हैं। सदा नहीं रहते। हमेशा साथ देने वाली चीज तो व्यक्ति का अपना पुण्य है।"

पहाड़िया जी इस समाधान के बाद कुछ नहीं कह सके। उन्हें ग्लानि होने लगी कि गुरुदेव के सान्निध्य में इतने वर्ष रहने के बावजूद वे यह क्यों नहीं समझ सके कि व्यक्ति के अपने कर्म ही प्रमुख हैं। कर्मों के परिणाम चमत्कार-वरदान से बदले नहीं जा सकते। यह भाव कुछ गहराए, इससे पहले ही गुरुदेव ने कहा—"बहुत बार समय का प्रवाह और बाहरी परिस्थितियाँ भी मन को विचलित कर देती हैं। उनसे परेशान नहीं होना चाहिए। अपनी निष्ठा मजबूत हो तो कुछ नहीं बिगड़ता।" (क्रमश:)

गुरु नानकदेव सात्त्विक जीवन जीते थे तथा प्रभु-स्मरण करते थे। एक बार उनके पास एक व्यक्ति आया और बोला—"बाबा! मैं चोरी तथा जघन्य अपराध करता हूँ। मेरा जीवन सुधर जाए, ऐसा कोई उपाय बताइए।" गुरु नानक जी ने कहा—"तुम चोरी या अन्य गलत काम करना बंद कर दो, तुम्हारा कल्याण हो जाएगा।" वह व्यक्ति उन्हें प्रणाम करके लौट गया। कुछ दिनों बाद वह फिर आया और बोला—"बाबा! गलत काम छूट नहीं रहे।"

इस पर गुरु नानक जी बोले—"वत्स! तुम अपने द्वारा किए सभी गलत कामों के बारे में दूसरों को बता दिया करो।" चोर ने अगले दिन चोरी की, लेकिन उसकी दूसरों को बताने की हिम्मत ही नहीं हुई। उसे लगा कि लोग उससे घृणा करने लगेंगे। उसने सोचा कि दूसरों को बताने से तो यही बेहतर है कि मैं चोरी ही करना छोड़ दूँ। कुछ दिनों बाद उसने गुरु नानक जी को जाकर बताया—"बाबा! आपके सुझाए तरीके ने मुझे अपराधमुक्त कर दिया है। अब मैं मेहनत की कमाई से गुजारा करता हूँ।"

अन्नदाता किसानों के श्रममूल्य का निर्धारण

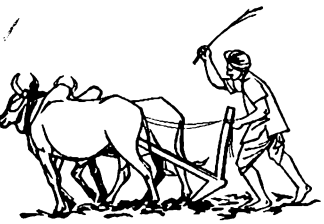

किसान अन्नदाता हैं। किसान हमारे भरण-पोषण के दायित्व का निर्वहन करते हैं, इसलिए किसानों के श्रम का मूल्य निर्धारित करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को अपने परिवार की बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए आजीविका प्राप्त करना, उसके मौलिक अधिकारों के अंतर्गत आता है। मनुष्य को दिनभर काम के बदले मिलने वाला पारिश्रमिक उसके परिवार के पोषण के लिए पर्याप्त होना चाहिए—जिससे परिवार की आहार, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी हो सकें।

भारत में संगठित क्षेत्र में पाँच लोगों के परिवार के पोषण के लिए प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 2400 किलो कैलोरी के आधार पर एक दिन की मजदूरी निर्धारित की जाती है। काम अगर कुशल श्रम की श्रेणी में हो तो इसके लिए अतिरिक्त मजदूरी आँकी जाती है। कठिन परिश्रम के लिए 2700 किलो कैलोरी की आवश्यकता मानी गई है। उद्योग जगत में वस्तु का उत्पादन-मूल्य निर्धारित करते समय कर्मकारों की मजदूरी, लागत, खरच, प्रबंधन, व्यवस्थापन मूल्य के साथ मुनाफा जोड़ा जाता है—जिससे उद्योग को एक उत्पादक के नाते आमदनी प्राप्त होती है।

किसान कुशल श्रमिक, प्रबंधक और उत्पादक है। खेती में शारीरिक, बौद्धिक श्रम करना पड़ता है, इसलिए वह कुशल कार्य है। बुआई से फसल निकलने और बिक्री तक प्रबंधन एवं व्यवस्थापन, फसल की सुरक्षा आदि प्रबंधक और उत्पादक के सभी कार्य उसे करने पड़ते हैं। इन सभी कार्यों के लिए आमदनी प्राप्त करना किसान का मौलिक अधिकार है और इस अधिकार का संरक्षण करने के लिए नीति-निर्धारण करना लोक-कल्याणकारी सरकार की जिम्मेदारी है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21, 23, 38 (1) 38 (2), 39, 41, 43, 46, 47 जनता के इस अधिकार का संरक्षण करता है। लोक-कल्याणकारी सरकार की जिम्मेदारी है कि वह किसी का शोषण न होने दे और मौलिक अधिकार का रक्षण करे। संविधान में मजदूरी निर्धारण में किसी प्रकार के भेदभाव की अनुमति नहीं है।

उद्योगपतियों को अमर्यादित लाभ कमाने की खुली छूट है। उस पर कोई नियंत्रण नहीं है। उद्योगपतियों को इंसेंटिव के नाम पर हर साल लाखों, करोड़ों रुपये की कर माफी और सुविधाएँ भी दी जाती हैं। ऊपर से एनपीए में छूट भी दी जाती है। कंपनियों में कुशल लोगों की सेवा प्राप्त करने के लिए उन्हें स्पर्धात्मक मजदूरी और अन्य सुविधाएँ भी दी जाती हैं।

असंगठित कामगारों के लिए परिवार के दो लोगों को कर्म करने योग्य मानकर मिनिमम वेजेज एक्ट के अनुसार प्रतिदिन 365 रुपये मजदूरी निर्धारित की गई है, लेकिन आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि कृषिप्रधान देश में, जहाँ का मुख्य घटक किसान है, आजादी के 70 साल बाद भी उसे मेहनत का मूल्य देने की व्यवस्था नहीं बनाई गई है।

कुशल श्रमिक, प्रबंधक और उत्पादक के नाते आमदनी देने की बात तो दूर सबसे आवश्यक सेवा के लिए कठिन मेहनत के बावजूद उसे न्यूनतम मजदूरी प्राप्त नहीं होती है। फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में शरीर श्रम के लिए प्रतिदिन केवल 92 रुपये मजदूरी मिलती है। खुले बाजार में वह भी मिलने का कोई आश्वासन नहीं है। देश में किसी भी काम के लिए मिलने वाली मजदूरी में यह सबसे कम है और गरीबी रेखा से भी कम है। यह मजदूरी देश के संविधान में नागरिक को प्राप्ति अधिकार, कानून एवं मिनिमम वेजेज ऐक्ट का उल्लंघन है। इस मजदूरी में परिवार की आजीविका की न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति संभव नहीं है।

भारत में नागरिकों की मजदूरी में एकरूपता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को समान आधार पर मेहनत का मूल्य मिलना चाहिए। श्रममूल्य-निर्धारण में शारीरिक-बौद्धिक श्रम, संगठित-असंगठित, महिला-पुरुष का भेद करना अनीतिपूर्ण है।

सरकार को समान कार्य के लिए समान मजदूरी देने की संवैधानिक जिम्मेदारी पूरी करनी चाहिए। अभी तक

रोजगार के हर क्षेत्र में परिवार की आजीविका के लिए न्यूनतम मजदूरी सुनिश्चित नहीं की गई है। यह अन्यायकारी व्यवस्था कुछ कुतर्कों पर खड़ी की गई है।

सरकारी कर्मचारियों के लिए वेतन बढ़ाते समय कहा जाता है कि स्पर्धात्मक वेतन न देने से बुद्धिमान लोग सरकारी नौकरी में नहीं आएँगे व विदेश या निजी कंपनियों में चले जाएँगे। उद्योग जगत की मुख्य प्रेरणा मुनाफे को मानकर मालिक को लाभ कमाने की खुली छूट दी गई है। इतना ही नहीं उन्हें प्रोत्साहन देना, विकास के लिए जरूरी माना गया है। खेती छोड़कर बाकी सभी वस्तुओं के दाम उत्पादक तय करते हैं और बेचते हैं। किसान अपने उत्पादन के दाम तय करे, तब भी वह एक ऐसी व्यवस्था का शिकार है कि उसे मजबूरन खरीदने वाला जो दाम देगा, उसी में बेचना पड़ता है। उसके पास दूसरा कोई विकल्प नहीं रखा गया है।

फसलों का मूल्य देने की जब माँग होती है, तब ऐसा करने से देश में महँगाई बढ़ेगी और एक ग्राहक के रूप में किसान को ही महँगा अनाज खरीदना पड़ेगा—इस कुतर्क के आधार पर उसे मेहनत का मूल्य देने के लिए आज तक कोई व्यवस्था नहीं बनाई गई है। किसान के श्रम का शोषण करके देश में फसल सस्ती बनाए रखने का प्रावधान नहीं होना चाहिए। सरकारें किसान से मुफ्त सेवा चाहती हैं। आत्महत्या करने पर पाँच लाख रुपये, बंदूक की गोली से मरने पर पचास लाख रुपये सरकारें देती हैं, लेकिन किसान को जीवन देने के लिए उसके पास न कोई योजना है और न ही उस पर विचार करने के लिए वह तैयार है। इस परिस्थिति को बदलने के नाम पर सरकार जो नीतियाँ बना रही है, उसमें भी किसान के लिए कोई उचित योजना नहीं बनाई गई है।

इन सभी तथ्यों से स्वामीनाथन अनभिज्ञ नहीं होंगे। खासकर तब, जब आयोग को खेती की आर्थिक व्यवहार्यता में सुधार कर किसान की न्यूनतम शुद्ध आय निर्धारण का काम सौंपा गया हो। वे सरकार को कृषि फसलों के शास्त्रीय पद्धति से मूल्यांकन करने और उसके आधार पर श्रम-मूल्य देने या सभी कृषि उपज के दाम देने के लिए वैकल्पिक योजना पेश कर सकते थे, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। तब आयोग की सिफारिशों पर प्रश्नचिह्न खड़ा होता है।

स्वामीनाथन प्रथम हरितक्रांति के जनक माने जाते हैं। हरितक्रांति से कृषि। उत्पादन तो बढ़ा, लेकिन किसानों पर दोतरफा मार पड़ने से उनकी हालत तेजी से बिगड़ती गई। विशिष्ट फसलों का उत्पादन बढ़ने से फसलों की कीमत कम हुई। उत्पादन बढ़ाने के लिए रासायनिक खेती को बढ़ावा दिया गया—जिससे बीज, खाद, कीटनाशक, यांत्रिक खेती, सिंचाई, बिजली आदि के लिए किसान की बाजार पर निर्भरता बढ़ी और उससे उनका खरच भी बढ़ा, जिससे लागत और आय का अंतर इस तरह कम हुआ कि खेती घाटे का सौदा बनी और किसान कर्ज के जाल में फँसता चला गया।

हरितक्रांति में एक फसल-पिक पद्धति को बढ़ावा देने से जैव-विविधता, फसल-विविधता पर बुरा असर पड़ा। देश के बड़े हिस्से में बहुफसली खेती एक फसली खेती में परिवर्तित हो गई। किसान को अपनी खेती से पोषक आहार तत्त्व मिलना बंद हुआ तथा पूरे देश में रासायनिक खेती के कारण खाद्यान्न और पानी में जहर घुलने से भोजन जहरीला बन गया। इस प्रकार प्रथम हरितक्रांति से किसानों को कोई विशेष लाभ नहीं मिला और वह जैव-विविधता को प्रभावित करने के लिए कारण बनी। किसानों के नुकसान करने में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

स्वामीनाथन अपनी सिफारिशों को दूसरी हरितक्रांति या सदाबहार हरितक्रांति कहते हैं। जिसमें कृषि-उत्पादन बढ़ाने के लिए जी. एम. बीमा, कृषि ऋण का विस्तार, समूह खेती, गाँवों में गोडाउन की व्यवस्था आदि की सिफारिश की गई है, लेकिन यह सारी व्यवस्थाएँ कॉर्पोरेट खेती को बढ़ावा देने के लिए की जा रही हैं। इस प्रकार वह खेती पर केवल 20 प्रतिशत पूँजी और तकनीक का इस्तेमाल करेगा। हालाँकि कृषि बीमा, बैंकिंग में एफडीआई, जी. एम. बीज, ठेके की खेती, आधुनिक खेती पद्धति और इजराइली पद्धति की खेती आदि को बढ़ावा देने की तैयारी भी की गई है।

स्वामीनाथन आयोग ने एमएसपी में उत्पादन की भारतीय औसत लागत से 50 प्रतिशत अधिक मूल्य देने की सिफारिश की है, लेकिन तब, जब उत्पादन-मूल्य अनुचित पद्धति से निर्धारित किया जाता हो। एमएसपी की व्यवस्था उत्पादन मूल्य देने के लिए नहीं है। तब एमएसपी में थोड़ी बढ़ोत्तरी से किसानों को न्याय मिलना संभव नहीं है।

सवाल यह भी है किसान को न्यूनतम क्यों मिलना चाहिए। बात इतनी स्पष्ट है तब कुछ किसान संगठन

स्वामीनाथन आयोग की माँग क्यों कर रहे हैं, यह समझ से परे है। एमएसपी की संकल्पना ही मूलत: अन्यायपूर्ण है। एमएसपी फसल का उत्पादन मूल्य नहीं है। वह लागत मूल्य की न्यूनतम कीमत है। वह किसान को केवल यह आश्वासन देती है कि अगर उसकी फसलें एमएसपी से कम दर पर होती हैं तो सरकार उनकी खरीद करेगी। राज्य सरकारों द्वारा अनुचित तरीकों से निकाले गए उत्पादन-खरच के साथ सीएसीपी (कृषि लागत और मूल्य आयोग) की माँग एवं आपूर्ति देश-विदेश में फसलों की कीमतें, औद्योगिक लागत पर प्रभाव, महँगाई, खाद्य सुरक्षा, कृषि विविधता, अर्थव्यवस्था पर मूल्य नीति का प्रभाव इत्यादि 18 पैरामीटर के आधार पर उपज मूल्य को नियंत्रित करने के लिए और उसे बाजार मूल्य के आस-पास कायम रखने के लिए एमएसपी निर्धारित करने की सिफारिश करता है। जिसके आधार पर केंद्र सरकार एमएसपी घोषित करती है।

राज्य सरकारों की फसलों के लागत मूल्य निकालने की पद्धति भेदभावूपर्ण, अवैज्ञानिक व अन्यायपूर्ण है। जिसमें लागत मूल्य, किसान के परिश्रम मूल्य तथा बाजार मूल्य व न्यूनतम मजदूरी की दरों संबंधित कानून का उल्लंघन करके वास्तविकता से कम, भेदभावपूर्ण आँका जाता है। बीज, खाद, कीटनाशक, सिंचाई आदि में खरच बहुत कम आँका जाता है, जिसमें किसानों को फसलों की लाभकारी कीमत मिलना तो संभव ही नहीं, मेहनत का उचित मूल्य मिलने की भी व्यवस्था नहीं है।

एक अध्ययन के अनुसार सरकार एमएसपी सही घोषित करती है, लेकिन केवल पाँच फसलें मर्यादित मात्रा में खरीदती है। विशेष परिस्थिति में किसी राज्य में खाद्य फसल खरीदी जाती है। सरकार द्वारा खरीफ के केवल 6% किसानों को ही लाभ मिलता है। कुल कृषि-उत्पादन का लगभग 6% हिस्सा ही सरकारें खरीद पाती हैं अर्थात 94% किसानों का कृषि-उत्पादन दलालों के भरोसे बिकता है। सैकड़ों फसलों की न तो एमएसपी घोषित होती है न ही उनकी खरीद की कोई योजना है।

हमें देश में एक ऐसी व्यवस्था बनानी होगी, जिसके द्वारा संगठित-असंगठित भेद किए बिना एक देश एक श्रममूल्य मिलने की व्यवस्था होनी चाहिए। देश में सबके लिए न्याय व समता के आधार पर मापदंड निर्धारित होने चाहिए। किसान को कुशल श्रम के लिए श्रममूल्य सुनिश्चित करना चाहिए। यह श्रममूल्य समकालीन वेतन आयोग द्वारा निर्धारित कर्मचारियों को दिए जा रहे अधिकतम श्रममूल्य के 10 % से कम नहीं होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त किसानों को प्रबंधन, व्यवस्थापन और फसलों की सुरक्षा आदि कार्यों के लिए श्रममूल्य तथा एक उत्पादक की आमदनी जोड़कर निर्धारित किया गया फसल का उत्पादन-मूल्य मिलना चाहिए। सरकारी खरीद में या खुले बाजार में उसे फसल का मूल्य नहीं मिल रहा हो ऐसी स्थिति में उचित श्रम मूल्य, बाजार मूल्य में प्राप्त श्रम मूल्य की अंतर राशि के नुकसान-भरपाई के रूप में किसान को मिले, ऐसी व्यवस्था बनानी होगी। यह आज की आवश्यकता है कि किसान का शोषण नहीं होना चाहिए, बल्कि पोषण होना चाहिए। ❑

विलंब की सूचना

कोविड-19 महामारी के कारण मार्च, 2020 से संपूर्ण भारतवर्ष में लॉकडाउन रहा, ट्रेनें अभी तक नहीं चल पा रही हैं। सर्वविदित है कि डाक का प्रेषण रेल डाकसेवा के माध्यम से होता है। डाकसेवा बाधित चल रही है—छोटे-मोटे पत्र/पैकिट सड़क मार्ग से जिस-तिस प्रकार पहुँच रहे हैं। अब डाक विभाग आंशिक रूप से जिस-तिस प्रकार डाक वितरण का कार्य प्रारंभ कर पा रहा है। आगे भी आपकी प्रिय अखण्ड ज्योति/युगनिर्माण योजना/गुजराती युगशक्ति गायत्री/प्रज्ञा अभियान कब तक मिलें, कुछ कहा नहीं जा सकता।

हम लोग भरसक प्रयास कर रहे हैं कि पत्रिकाएँ समय से पहुँचें। विवशता के लिए हमें भी खेद है। आशा है परिवार के सदस्य अन्यथा न लेंगे।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 140

यौगिक विधियों का किशोरों पर प्रभाव

'किशोरवय' उम्र का एक ऐसा पड़ाव है, जहाँ से गुजरते हुए मानवीय व्यक्तित्व अपनी अंतर्निहित मौलिकताओं को उभारकर जीवन को सही दिशा, संतुलन, सामंजस्य और प्रखरता के मार्ग पर अग्रसर करता है। जीवन के इसी मोड़ पर, जिसे हम किशोरावस्था कहते है, यदि व्यक्तित्व की क्षमताओं पर नियंत्रण, संतुलन और सुनियोजन सध जाए तो जीवन की डोर हाथ में होती है।

ऐसे जीवन को आसानी से लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाकर सफलता और सार्थकता की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है, परंतु इस वय में यदि जीवन पर पकड़ नहीं बन पाई तो व्यक्तित्व की क्षमताएँ ऐसी बिखर जाती हैं, जिसे समेटने में कभी-कभी सारी उम्र चुक जाती है और तब भी जीवन की डोर हाथ नहीं आती।

व्यक्ति के जीवन की सफलता और सार्थकता की नींव किशोरावस्था में ही रखी जाती है। यह उम्र का अत्यंत संवेदनशील और महत्त्वपूर्ण दौर होता है जहाँ शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्तर पर द्वंद्व, संघर्ष और सृजन की तीव्र प्रक्रियाएँ प्राण, मन और हृदय को आंदोलित किए रहती हैं।

ऐसी दशा में किशोरों को सही मार्गदर्शन, प्रेरणा, प्रोत्साहन, साहस, स्नेह आदि के संबल की अत्यंत आवश्यकता होती है। इसके अभाव में किशोरों में ऐसी अनेक जटिलताएँ एवं समस्याएँ उत्पन्न होने लगती हैं, जिनसे उनके व्यक्तित्व विकास पर गंभीर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। किशोर जीवन को ऐसी स्थिति में पहुँचने से बचाने के लिए यह जरूरी है कि समय रहते इस दिशा में सजगता बरती जाए एवं किशोरवय की आवश्यकता का समुचित ध्यान रखते हुए उनमें स्वयं के प्रति समझ और आत्मविश्वास जैसी क्षमताएँ विकसित की जाएँ।

वर्तमान में किशोरों को जिस तरह से व्यावहारिक जीवन एवं व्यक्तित्व विकास संबंधी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है तथा उचित समाधान और प्रेरक मार्गदर्शन के अभाव में उनका जीवन आत्मघाती प्रवृत्तियों को पोषण देने लगता है, ऐसे में परिवार, समाज और राष्ट्र को किशोरों की समस्याओं व विकास संबंधी बातों को गंभीरता से लेते हुए सार्थक समाधान के प्रयास खोजने की आवश्यकता है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में इस दिशा में पहल करते एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है। सन् 2017 में विश्वविद्यालय के योग एवं स्वास्थ्य विभाग के अंतर्गत शोधार्थी रीना अग्निहोत्री द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ. सुरेश लाल बर्णवाल के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस प्रायोगिक शोध अध्ययन का विषय है—'इफेक्ट ऑफ यौगिक इंटरवेन्शन ऑन एक्जेक्यूटिव फंक्शन्स अमन्ग एडल्सेन्ट—एन इंपेरीकल स्टडी'।

इस अध्ययन का उद्देश्य किशोरों की कार्यकारिणी प्रणाली को विकसित, सुदृढ़ और संतुलित बनाने वाली क्षमताओं का अध्ययन करना है। आधुनिक विज्ञान की भाषा में इस कार्यकारिणी प्रणाली को एक्जेक्यूटिव फंक्शन कहा गया है, जिसके अंतर्गत मानसिक, भावनात्मक और व्यवहारगत क्षमताओं को सम्मिलित किया गया है। किशोरों में यदि कार्यकारिणी प्रणाली कमजोर अथवा अविकसित या असंतुलित रहती है तो उन्हें अनेक समस्याओं जैसे—कमजोर याद्दाश्त, एकाग्रता में कमी, योजना बनाने व निर्णय लेने की क्षमता में कमी, दैनिक जीवन में नकारात्मक अथवा गलत भावनाओं से युक्त व्यवहार, आत्मनियंत्रण, आत्मसम्मान व आत्मविश्वास की भावना में कमी आदि का सामना करना पड़ता है।

शोधार्थी की मान्यता है कि किशोरों की उक्त समस्याओं को प्रायः परिवार एवं विद्यालय में बच्चे के व्यक्तित्व से जुड़ी आदतों के रूप में देखा जाता है और इसे बदलने अथवा उपचार की आवश्यकता महसूस नहीं की जाती है। यह अध्ययन कार्यकारिणी प्रणाली की ऐसी ही समस्याओं की जानकारी देने एवं समाधान के सार्थक उपायों को वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक रीति से खोजने का प्रयास है। शोधार्थी द्वारा

इस अध्ययन को पूरा करने के लिए दक्षिणी दिल्ली के पब्लिक स्कूल के सौ विद्यार्थियों का आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा चयन किया गया।

इन चयनित सभी विद्यार्थियों की आयु 12 से 15 वर्ष के मध्य थी। इन 100 विद्यार्थियों में 50 बालक और 50 बालिकाएँ थे। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी विद्यार्थियों का प्रायोगिक परीक्षण किया गया। परीक्षण के लिए जिस शोध-उपकरण का प्रयोग किया गया, वह है—सी. स्टेवन, के. पीटर, और ए. गेरार्ड द्वारा निर्मित बिहेवियर रेटिंग इन्वेन्ट्री ऑफ एक्जेक्यूटिव फंक्शन—सेल्फ रिपोर्ट वर्जन (बी. आर. आई. ई. एफ. एस. आर.)। परीक्षण करने के उपरांत तीन महीने की अवधि तक शोधार्थी द्वारा विद्यार्थियों को नियमित यौगिक विधियों का अभ्यास कराया गया। यौगिक विधियों के रूप में शोध अध्ययन में जिन विशिष्ट यौगिक प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया गया वे हैं—सूर्य नमस्कार (10-12 मिनट), प्राणायाम (02-05 मिनट), त्राटक (02-06 मिनट), योग-निद्रा (10-15 मिनट), ओम् उच्चारण (01-02 मिनट)।

प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर सभी प्रतिभागियों का पूर्व की भाँति पुनः परीक्षण किया गया। तत्पश्चात दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के रूप में यह पाया गया कि शोध में अपनाई गई यौगिक हस्तक्षेप विधि का किशोरों की कार्यकारिणी प्रणाली पर सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है।

साथ ही अध्ययन में यह भी पाया गया कि किशोरों में कार्यकारिणी प्रणाली संबंधी समस्याओं में कमी आई और इसके स्थान पर उनके व्यक्तित्व में निर्णय, नियंत्रण, समझ, संतुलन, योजना, स्मृति, जिम्मेदारी, स्व-मूल्यांकन, प्रेरणा, आत्मविश्वास जैसी अनेक सकारात्मक क्षमताओं के विकास पर प्रभाव पड़ा।

निष्कर्ष रूप में इस अध्ययन के जो सार्थक परिणाम प्राप्त हुए हैं, इसके पीछे का मुख्य कारण शोध में अपनाई गई यौगिक हस्तक्षेप की तकनीक है। इसके अंतर्गत शोधार्थी ने योग विज्ञान की ऐसी विशिष्ट विधियों को सम्मिलित किया है, जिनके अभ्यास से हमारा व्यक्तित्व संपूर्णता में विकसित होता है और शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्तर की क्षमताओं में विकास के साथ-साथ संतुलन और कुशलता की वृद्धि होती है।

यौगिक विधियों के अंतर्गत अपनाई गई पहली यौगिक विधि है—सूर्य नमस्कार। यह कई आसनों, प्राणायाम, मंत्र आदि की सम्मिलित एक अत्यंत प्रभावकारी योग विधि है। इसके नियमित अभ्यास से संपूर्ण स्वास्थ्य एवं व्यक्तित्व क्षमताओं पर सकारात्मक और लाभकारी प्रभाव पड़ता है। यह शारीरिक रूप से सभी तंत्रों में संतुलन और उत्प्रेरक का लाभ देती है जैसे—इंडोक्राइन, सर्कुलेटरी, रेस्पिरेटरी, पाचनतंत्र आदि पर यह सकारात्मक प्रभाव डालती है। यह विधि किशोरों के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक विकास में अत्यंत सहयोगी होने के साथ-साथ उनके जीवन में आध्यात्मिक लाभ भी प्रदान करती है।

अध्ययन की दूसरी यौगिक विधि है—प्राणायाम। प्राण जीवन की शक्ति है। शरीर में इसके नियमन से ऊर्जा, उत्साह, स्फूर्ति, नियंत्रण, स्थिरता, शांति जैसी अनेक गुणकारी क्षमताओं का विकास होता है। इसका नियमित अभ्यास क्षमताओं के विकास के साथ-साथ नकारात्मक मनोभावों, तनाव, अनिद्रा, उद्विग्नता, क्रोध आदि समस्याओं के समाधान में भी उपयोगी होता है।

तीसरी विधि है—त्राटक। यह एक विशेष प्रकार की ध्यान-विधि है। बाह्य त्राटक से जहाँ नेत्रज्योति, मानसिक स्थिरता में वृद्धि होती है तो वहीं अंतःत्राटक की विधि मानसिक समस्याओं में लाभकारी है और एकाग्रता, धैर्य, तारतम्यता जैसी अनेक क्षमताओं को विकसित करती है। यह क्रिया मस्तिष्क में निरंतर प्रवाहित रहने वाली विचार और कल्पनाशक्ति के प्रवाह को सकारात्मक दिशा प्रदान करती है।

चौथी यौगिक विधि है—योग निद्रा। यह संपूर्ण शिथिलता, स्थिरता और विश्रांति प्राप्त करने की अत्यंत प्रभावकारी तकनीक है। योग चिकित्सा विज्ञान में मानसिक समस्याओं के उपचार में इस विधि को कारगर और प्रभावकारी उपाय के रूप में अपनाया जाता है। इस विशेष विधि में शरीर, प्राण, मन और भाव-संस्थान की वस्तुस्थिति पर सजगता प्राप्त कर स्व-नियंत्रण का अभ्यास किया जाता है।

इसके नियमित अभ्यास से व्यक्तित्व की क्षमताओं में संतुलन स्थापित होता है। साथ ही शांति, प्रसन्नता, सजगता व आत्मिक स्वानुभूति की प्राप्ति होती है। अंतिम यौगिक विधि ओम् उच्चारण की है। ओम् को ब्रह्मांडीय ऊर्जा का

केंद्र मानकर स्वयं के व्यक्तित्व में उस दिव्य ऊर्जा की अनुभूति का अभ्यास करना इस विधि का मुख्य उद्देश्य है। साथ ही शाब्दिक उच्चारण से प्राणायाम संबंधी लाभ भी इस विधि में सम्मिलित हो जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से यह यौगिक अभ्यास गले, फेफड़े, मस्तिष्क आदि की कार्यक्षमता को सबल बनाता है एवं याद्दाश्त, समझ, प्रखरता, एकाग्रता, चिंतनशक्ति जैसी क्षमताओं में वृद्धि कर तनाव, क्रोध, आतुरता, नकारात्मकता जैसी समस्याओं के नियंत्रण में लाभकारी सिद्ध होता है।

अध्ययन में प्रयुक्त सभी यौगिक विधियाँ भारतीय योग-साधना का ही विशेष अंग हैं। चूँकि उक्त चयनित विधियों का प्रयोग किशोरों की समस्याओं एवं उनके समग्र समाधान की दृष्टि से किया गया, अतः इस अध्ययन के परिणामों को किशोर जीवन के संरक्षण, पोषण और विकास के लिए खोजे गए सार्थक और सफल उपायों के रूप में आत्मसात् करना चाहिए तथा इस दिशा में परिवार, समाज व शिक्षातंत्र में जागरूकता उत्पन्न कर योग जैसी कारगर विधियों को किशोरों की जीवनचर्या का अनिवार्य हिस्सा बनाने हेतु पहल और प्रयास करना चाहिए।

किशोरों की कार्यकारिणी प्रणाली को सुचारु एवं विकसित बनाने के उद्देश्य से इस शोध के निष्कर्ष में जो लाभकारी जानकारी प्राप्त हुई है, वह अत्यंत उपयोगी, आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है। शोध में बताई गई यौगिक विधियों को अपनाने पर किशोर जीवन में जो लाभ प्राप्त होते हैं, वे हैं—(1) शरीर, मन और वातावरण व समाज के प्रति सजगता, (2) शारीरिक स्थिरता, धैर्य और मानसिक शांति। (3) आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की वृद्धि, (4) जिम्मेदारी की भावना तथा (5) शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य का प्रबंधन। इस तरह यह एक जरूरी शोध है। ❑

तर्कशास्त्र के विद्वान पंडित रामनाथ ने नवद्वीप के पास एक निर्जन वन में विद्यालय स्थापित किया था। उसमें वे विद्यार्थियों को शास्त्रज्ञान दिया करते थे। उस समय कृष्णनगर में महाराज शिवचंद्र का शासन था। उन्हें पता लगा कि विद्वान पंडित रामनाथ गरीबी में दिन काट रहे हैं तो उनकी सहायता के उद्देश्य से वे वहाँ पहुँचे। उन्होंने उनसे पूछा—"मैं आपकी क्या मदद करूँ?" पंडित जी बोले—"भगवत्कृपा से मुझे कोई अभाव नहीं।" राजा बोले—"मैं घर खरच के बारे में पूछ रहा हूँ।" पंडित जी ने कहा—"इस बारे में तो गृहस्वामिनी ही अधिक जानती हैं, उन्हीं से पूछें।" राजा ने गृहस्वामिनी के पास जाकर पूछा—"घर खरच हेतु कोई कमी तो नहीं है?" वे बालीं—"महाराज! भगवद्भक्तों को क्या कमी हो सकती है? पहनने को कपड़े हैं, सोने के लिए बिछौना है। खाने के लिए विद्यार्थी भोजन ले आते हैं। भला इससे अधिक की जरूरत भी क्या है?" राजा ने पुनः आग्रह किया—"देवी! हम चाहते हैं कि आपको कुछ गाँवों की जागीरें प्रदान करें। इससे होने वाली आय से गुरुकुल भी ठीक तरह से चल सकेगा और आपके जीवन में भी कोई अभाव नहीं रहेगा।" उत्तर में वृद्धा ब्राह्मणी मुस्कराते हुए बोली—"परमात्मा ने प्रत्येक मनुष्य को जीवनरूपी जागीर पहले से ही दे रखी है। जो जीवनरूपी जागीर को सँभालना सीख जाता है, फिर उसे कोई अभाव नहीं रहता।" राजा निरुत्तर होकर लौट गए।

समय की कीमत समझें उसका सही नियोजन करें

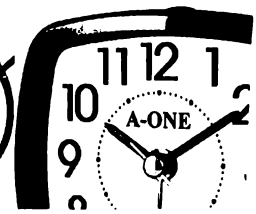

सभी को 24 घंटे मिले हैं, लेकिन इसी समय में कुछ लोग ऐसा कुछ कर जाते हैं, जिसे चमत्कार की श्रेणी में गिना जाता है और कुछ इसे यों ही बरबाद कर देते हैं तथा हमेशा समय की कमी की शिकायत करते रहते हैं। अमूमन हम समय की कीमत नहीं समझ पाते। जब सब ठीक चल रहा होता है तो समय यों ही बीत रहा होता है, लेकिन विषम पलों में, परिस्थितियों के दबाव में समय की कीमत ठीक-ठीक समझ आती है।

जब परीक्षा की घड़ियाँ समीप आती हैं, तब समय बहुत कीमती प्रतीत होता है। समय को नष्ट कर रही सारी अनावश्यक चीजें प्राथमिकता से विलुप्त होने लगती हैं। जो ऐसे पलों में भी समय की कद्र नहीं करते, वे फिर तनाव, अवसाद का शिकार हो जाते हैं और परीक्षा की अग्नि कसौटी पर खरे नहीं उतर पाते। जब कोई बस या ट्रेन के सफर पर होता है या हवाई यात्रा करता है तो समय की कीमत समझ आती है। कुछ ही पलों की देरी में बस, ट्रेन या फ्लाइट छूट सकती है। ऐसे में व्यक्ति मुस्तैद रहता है कि समय हाथ से निकल न जाए।

ऐसे ही जीवन की यात्रा में हर पड़ाव एक कसौटी की तरह आता है। जो समय का सदुपयोग करते हुए निर्धारित कार्यों को करते हैं, वे अपने कर्त्तव्यपालन के संतोष के साथ जीवन का आनंद मनाते हैं और जो ऐसे समय में लापरवाही बरतते हैं, समय को आलस्य या निरर्थक कार्यों में नष्ट करते हैं, समय भी उन्हें फिर नष्ट कर देता है। यह एक कठोर बात लग सकती है, लेकिन सत्य यही है। जिसने अपने जीवन का स्वर्णिम काल यों ही बरबाद कर दिया, जीवन के उत्तरार्द्ध में उसे फिर इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है। अशांति, असंतोष ही उसके हिस्से में आते हैं।

ऐसे में यदि कोई धन, विद्या, कीर्ति, यश, शांति, सुकून आदि का रोना रोए तो यह उचित नहीं। इन संपदाओं के अर्जन का जो मूलस्रोत समय है, उस पर जब समय रहते ध्यान नहीं दिया गया तो अब क्या किया जा सकता है। देखा जाए तो वास्तविक संपदा तो समय ही है। यदि इसकी कीमत समझी होती व इसका सही नियोजन किया होता तो बाकी संपदाएँ तो स्वत: ही इससे उद्भूत हो जातीं। कह सकते हैं कि हर पल हाथ से निकल रही समय-संपदा को समझकर उसका सदुपयोग करना जिसने सीख लिया मानो उसने काल को ही अपने पक्ष में कर लिया।

जीवन के प्रवाह में व्यक्ति को यह ध्यान कहाँ रहता है कि वह हर पल मर रहा है। जीवन की उलटी गिनती चल रही है। बूँद-बूँद घड़े से पानी टपक रहा है, जो एक दिन खाली होना तय है। हर श्वास के साथ जीवन-संपदा चुकती जा रही है और हम मरण की ओर बढ़ रहे हैं। यह एक शाश्वत सत्य है।

यदि इसका एहसास हो जाए तो जीवन के हर पल का सदुपयोग करते हुए काल की साधना, महाकाल की आराधना हो जाए। ऐसा न करते हुए मात्र मंदिरों में जाकर ईश्वर की चिह्नपूजा करना और इसको सब कुछ मान लेना एक भूल होगी; क्योंकि सृष्टि का जर्रा-जर्रा समय की कद्र करता हुआ महाकाल की उपासना कर रहा है और कुछ संदेश दे रहा है।

यदि हम चारों ओर नजर उठाकर देखें तो पाएँगे कि सृष्टि का हर घटक समय के अनुसार चल रहा है। सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, पृथ्वी, ऋतुएँ—सब अपने नियत क्रम से गतिशील हैं। इनमें थोड़ा-सा भी व्यतिक्रम नहीं होता। एक इनसान ही है, जो इसमें मनमानी करता है और फिर प्रतिकूल परिणाम मिलने पर शिकायत करता है।

यदि हम ईश्वरीय विधान के अनुसार चलते तो हमारी दिनचर्या नियमित होती। शयन-जागरण समय पर होता। आहार-विहार का क्रम प्राकृतिक एवं सुव्यवस्थित होता और एक स्वस्थ एवं नीरोग जीवन, प्रसन्न चित्त हमारे हिस्से में होते, लेकिन समय की कीमत न समझ पाने के कारण अस्त-व्यस्त दिनचर्या, असंयमित जीवनयापन करते हैं और दुर्बलता तथा रोग को स्वयं ही निमंत्रण देते हैं। ऐसे

में फिर व्यक्ति तन-मन की स्फूर्ति और तेज खो बैठता है। जीवन सुस्त और निस्तेज हो जाता है और एक आधा-अधूरा एवं असफल-असंतुष्ट जीवन जीने के लिए विवश होता है।

समझदारी का तकाजा है कि व्यक्ति अपना समय आलस्य और निरर्थक कार्यों में न बिताए। आलस्य को दुनिया की सबसे भयंकर बीमारी, समस्त रोगों की जड़ मानें। इससे शरीर ही रुग्ण नहीं होता, बल्कि मन की शक्तियाँ भी कुंठित हो जाती हैं, जिसके कारण व्यक्ति आर्थिक रूप से भी दरिद्रता एवं अभाव में जीने के लिए अभिशप्त हो जाता है।

आलस्य के कारण ही व्यक्ति टालमटोल करता रहता है। आज नहीं, कल करेंगे। इस कल के बहाने हमारा बहुत-सा समय नष्ट हो जाता है। स्वेट मार्डन के शब्दों में इतिहास के पृष्ठों में कल की धारा पर कितने प्रतिभावानों का गला कट गया, कितनों की योजनाएँ अधूरी रह गईं। कितनों के निश्चय बस, यों ही रह गए। कितने पछताते तथा हाथ मलते रह गए। कल—असमर्थता और आलस्य का द्योतक है; जबकि आज अभी वर्तमान में सक्रिय जीवन की जीवंतता का प्रतीक है। संत कबीर का दिया मंत्र भी अनुकरणीय है कि—

'काल्ह करै सो आज करु, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब॥

समय का पूरा लाभ उठाने के लिए आवश्यक है कि एक समय में एक ही काम किया जाए। जो व्यक्ति एक ही समय कई काम करना चाहते हैं, उनके कोई भी काम पूरे नहीं हो पाते। उनका अमूल्य समय यों ही नष्ट होता है और वे अधूरे कामों का बोझ लादे फिरते हैं। इसके साथ ही जो काम करें स्वयं ही पूरा करें। अपने कामों को दूसरों पर छोड़ना भी एक तरह से टालने के समान ही हो सकता है।

सतत श्रम के साथ थकान स्वाभाविक है। जब थकावट हो तो थोड़ा विश्राम करें, लेकिन आलस्य को प्रश्रय न दें; क्योंकि यह समय का सबसे बड़ा शत्रु है। ऐसा न हो कि आलस्य में अवसर चूक जाए। रस्किन के शब्दों में जिस तरह लोहा ठंढा पड़ जाने पर हथौड़ा पटकने से कोई लाभ नहीं, उसी तरह अवसर निकल जाने पर मनुष्य का प्रयत्न भी व्यर्थ चला जाता है।

नियमित समय पर काम करने का अभ्यास डालें। इसकी आदत पड़ जाने पर कार्य में आनंद आने लगेगा और साथ ही कार्यक्षमता में भी अद्‌भुत विकास होगा। अपने विषयों के अधिकारी ज्ञानियों का निचोड़ है कि एक घंटा प्रतिदिन एक विषय में नियमित रूप से लगाने वाला व्यक्ति विषय का उद्‌भट विद्वान बन सकता है, बड़ी योग्यता हासिल कर लेता है। इसके लिए समय बरबाद करने वाले दोस्तों, निठल्ले लोगों को दूर से ही नमस्कार करना चाहिए। इन्हें समय का दुश्मन मानकर चलना चाहिए। इस संदर्भ में स्मार्टफोन के मायावी अवरोध से भी सावधान रहने की आवश्यकता है।

इस समय जब हम कोविड—19 महामारी के विषम दौर से गुजर रहे हैं—लोग घरों में एक तरह से कैद हैं। कई बोर तक अनुभव कर रहे हैं। यदि समय के सदुपयोग की समझ हो तो ये ही पल वरदान बन सकते हैं। इस दौरान कितने सारे कार्यों को अंजाम दिया जा सकता है। विद्यार्थी एवं शिक्षक नई भाषा सीख सकते हैं। अपने तकनीक-कौशल में वृद्धि कर सकते हैं। अपने संचार-कौशल को निखार सकते हैं। अपनी रुचि के अनुरूप नया अध्ययन करते हुए अपने ज्ञान के भंडार को बढ़ा सकते हैं। स्वास्थ्य-संवर्द्धन का न्यूनतम कार्यक्रम इसमें जोड़ा जा सकता है। स्वाध्याय-साधना को धार दी जा सकती है। समयाभाव के कारण अवरुद्ध पड़े कार्यों को गति दी जा सकती है। परिवार जनों को उचित समय देकर उनके साथ कुछ बेहतरीन पल बिताए जा सकते हैं। वास्तव में देखा जाए तो यह दौर हमारी परीक्षा का भी है कि हम समय-संपदा का महत्त्व कितना समझते हैं और इसका कितना सदुपयोग करते हैं। ❑

यदि आप आज किन्हीं कठिनाइयों में हैं तो इसका कारण ईश्वर नहीं है, वरन आपके ही कुछ दोष हैं, जिन्हें आप भले ही जानते हों या न जानते हों। पाप एवं दुष्कर्म ही एकमात्र दुःख का कारण नहीं होते। अयोग्यता, मूर्खता, निर्बलता, निराशा, फूट एवं आलस्य भी ऐसे दोष हैं, जिनका परिणाम पाप के ही समान और कई बार उससे भी अधिक दुःखदायी होता है। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

उत्कृष्ट व पवित्रतम भावना है प्रेम

मानव जीवन की अनेक अनुभूतियों को विभिन्न माध्यमों से व तार्किक रूप से समझने और समझाने के प्रयास हमारे समाज में होते रहे हैं और इन अनुभूतियों में जिस अनुभूति को सबसे अधिक परिभाषित करने का प्रयास किया गया है, वह है—**प्रेम**। अनुभूतियों की यथार्थ अभिव्यक्ति हो सके, उसे परिभाषाओं व शब्दों के तर्क जाल आदि में बाँधा जा सके, यह पूरी तरह से संभव नहीं है, फिर भी इसके लिए पूरे प्रयास किए जाते हैं। जिस तरह से मीठे, खारे, खट्टे, तीखे, कड़ुए व कसैले स्वाद का यथार्थ अनुभव उसे चखकर ही किया जा सकता है, उसी प्रकार प्रेम के स्वाद का यथार्थ अनुभव उसे अनुभव करके ही किया जा सकता है।

प्रेम कैसा होता है ? उसकी अनुभूति कैसी होती है ? इसे लोग भाँति-भाँति से जानने का प्रयास करते हैं, उसे पाने का प्रयास करते हैं। प्रेम मनुष्य की सभी भावनाओं में सबसे उत्कृष्ट व पवित्रतम भावना है। 'प्रेम' शब्द ही ऐसा है, जिसे सुनते, अनुभव करते या अभिव्यक्त करते हुए व्यक्ति के मन में मधुर भाव उमड़ने लगते हैं व साथ-ही-साथ इसके कारण एक विशेष प्रकार की अनुभूति का एहसास-सा होने लगता है और मन में कल्पनाओं का संसार भी सजने लगता है और लहरों की भाँति मन में विचारों का आवेग हिलोरें लेने लगता है, लेकिन क्या इस प्रेम की व्याख्या की जा सकती है ? नहीं, क्योंकि प्रेम में इतनी गहराई है कि उसकी थाह को पकड़ पाना असंभव है, इसीलिए प्रेम की अनंत व अनेक परिभाषाएँ व अभिव्यक्तियाँ लोगों ने भाँति-भाँति से दी हैं, लेकिन फिर भी लगता है कि इसमें अभी कुछ और शेष है।

प्रेम की वास्तविक परिभाषा को समझने व समझाने में कभी-कभी व्यक्ति का संपूर्ण जीवन ही व्यतीत हो जाता है, फिर भी वो किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाता; क्योंकि प्रेम का न तो कोई निश्चित रूप है और न स्वरूप। यह तो मात्र मनुष्य के विचारों, भावनाओं व हृदय की गहराइयों में रचा-बसा हुआ है, जो कभी भी, कहीं भी व किसी भी माध्यम से परिलक्षित हो जाता है। वास्तव में प्रेम करना सभी प्राणियों व जीव-जंतुओं के स्वभाव में जन्मजात ही होता है, जिसकी अभिव्यक्ति के तरीके सबमें भिन्न-भिन्न होते हैं। मनुष्य में यह प्रवृत्ति सर्वाधिक विकसित है; क्योंकि वो सोचने-समझने की शक्ति के अलावा, वाक्शक्ति व शारीरिक अभिव्यक्ति के द्वारा भी अपने प्रेम को व्यक्त करने की क्षमता रखता है। यह क्षमता अन्य जीव-जंतुओं में नहीं है।

मनुष्य जीवन में प्रेम के भिन्न-भिन्न रूप समाहित हैं। मनुष्य अपनी बाल्यावस्था में अपने माता-पिता व भाई-बहनों से सर्वाधिक प्रेम करता है, इसके पश्चात जैसे-जैसे वो बड़ा होता है, उसके प्रेम की परिधि का भी विस्तार होता है, फिर उसकी प्रेम की परिधि में संपूर्ण परिवार, प्रियजन, मित्रजन, समाज व राष्ट्र का समावेश होने लगता है। जितना व्यक्ति का मन व हृदय ग्रंथिमुक्त व विशाल होते हैं, उतना ही पवित्र प्रेम उसके मन में परम व्यापकता के साथ बसता है।

माता-पिता के साथ किया गया प्रेम जन्मजात व रक्त संबंधित होता है, जो आजन्म निभाने व न टूटने वाला होता है, इसमें निस्स्वार्थ प्रेम की भावना, आशा व विश्वास भी निहित होते हैं। भाई-बहनों से किया गया प्रेम—स्नेह की डोर से बँधा होता है, जो आपसी कर्त्तव्य-बोध को निभाने के साथ-साथ व्यक्ति के सुख-दुःख में साथ निभाने का भाव व अपनत्व लिए हुए होता है। इसी प्रकार दो अनजान व्यक्तियों का प्रेम पति-पत्नी के संबंध के रूप में होता है, जो प्यार, विश्वास, समर्पण व सामंजस्य की धरा पर टिका होता है। इसके अलावा समाज व राष्ट्र से प्रेम—सामाजिक संरचना से तालमेल बैठाने, जीवनयापन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा समाज व राष्ट्र के हित के लिए आवश्यक कदम उठाने हेतु भी होता है।

इन सबसे ऊपर ईश्वरीय प्रेम होता है। ईश्वर वह, जो दिखाई नहीं देता, लेकिन उसके द्वारा निर्मित इस सृष्टि को देखा जा सकता है। जो इस सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है, लेकिन मूर्तिमान नहीं है। उस ईश्वर से प्रेम करना आसान नहीं तो मुश्किल भी नहीं होता। जब व्यक्ति की भावनाएँ परम व्यापक बनती हैं, परिष्कृत होती हैं, पवित्र होती हैं,

तभी वह ईश्वर से यथार्थ में जुड़ पाता है और उनसे प्रेम कर पाता है, उन्हें अनुभव कर पाता है। मानव का ईश्वर से प्रेम उसे अगाध श्रद्धा व भक्ति से परिपूर्ण कर देता है। जैसे— मीरा का कृष्ण प्रेम व उसकी भक्ति। सूरदास का कृष्ण प्रेम, तुलसीदास का हनुमान के प्रति प्रेम व भक्ति, राम का सीता के प्रति प्रेम व भक्ति। संत नामदेव, संत एकनाथ, संत तुकाराम, चैतन्य महाप्रभु आदि का प्रेम व भक्ति अविरल थी। अपने इस प्रेम व भक्ति को अभिव्यक्त करने में इनके अंदर से काव्य प्रवाहित होने लगा। ये नाचने लगे, गाने लगे, रो-रोकर भगवान को पुकारने लगे और इनकी पुकार से भगवान भी द्रवित हुए और इन्हें अपने अनुराग व अनुग्रह से सराबोर किया।

प्रेम में संवेदना है, अत्यधिक ऊर्जा है और यह ऊर्जा हमारी बुद्धि पर परदा डाल देती है, लेकिन यदि विवेक का प्रयोग हो और प्रेम में होश न गँवाया जाए तो इस ऊर्जा का रूपांतरण करके इसे कहीं भी प्रयुक्त किया जा सकता है। ध्यान, इसी प्रेम का आध्यात्मिक रूपांतरण है। इस जगत में सर्वाधिक मूल्यवान प्रेम है। प्रेम अगर मिल जाए तो मानो परमात्मा मिल गया। जिसने प्रेम को नहीं जाना, वह प्रार्थना भी नहीं कर सकता है।

प्रेम सृजनात्मकता का शिखर है और इस पार को उस पार से जोड़ने का सेतु है। प्रेम जोड़ता है शरीर को आत्मा से, शब्द को शून्य से। यदि हृदय में प्रेम हो तो हमें सारी दुनिया खिले हुए फूलों से महकती प्रतीत होती है। जिसने प्रेम की इस ऊर्जा को रूपांतरित कर लिया, उसने भक्ति का स्वाद चख लिया और परमात्मा के सान्निध्य को अनुभव कर लिया।

प्रेम में वह शक्ति है, जो सूक्ष्मवातावरण को शुद्ध कर सकती है, परिष्कृत कर सकती है। ऐसा स्थान जहाँ किसी प्रेमी ने अपना संपूर्ण जीवन ईश्वर की प्रतीक्षा में व्यतीत कर दिया, वह स्थान एक तरह से तीर्थस्थल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। जो व्यक्ति वास्तव में प्रेम से भरा होता है, उसकी मात्र उपस्थिति भी लोगों को आनंदित करती है। जब ईश्वर के प्रेम से भरा हुआ भक्त कोई कार्य करता है, तब वह कार्य मूल्यवान हो जाता है।

इस तरह प्रेम हमारे जीवन की सभी अनुभूतियों का केंद्रबिंदु है। जहाँ प्रेम है, वहीं श्रद्धा है, वहीं मित्रता है, वहीं समर्पण है, सेवा है और विश्वास है। प्रेम जीवन का रस है, इसके अभाव में व्यक्ति का जीवन नीरस हो जाता है; इसलिए प्रेम से सिंचित हृदय में ही सच्ची मानवता का वास होता है। ❑

भगवान अपना कार्य किन्हीं महामानवों, देवदूतों के माध्यम से कराते रहे हैं। इन दिनों भी ऐसा ही हो रहा है। मनुष्य शरीर में प्रतिभावान देवदूत प्रकट होने जा रहे हैं। इनकी पहचान एक ही होगी कि वे अपने समय का अधिकांश भाग प्रभु की प्रेरणा के लिए लगाएँगे। शरीर कुछ-न-कुछ साधन उपार्जन करता है। नर-पशु उसे स्वयं ही खरचते हैं, पर देवमानवों की प्रकृति यह होती है कि अपने उपार्जन में से न्यूनतम अपने लिए खरच करें और शेष को परमार्थ-प्रयोजनों के लिए लगा दें। नवयुग का प्रधान स्वरूप है—लोकमानस का परिष्कार। यही अपने समय की साधना, पुण्य परमार्थ और धर्मधारणा है। इसके लिए जो जितना समय और साधन लगाता दीख पड़े, समझना चाहिए कि भगवान उसी के माध्यम से अपना अभीष्ट पुरुषार्थ पूरा कर रहे हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

युगगीता – 247

बंधन या मुक्ति का द्वार हैं ये स्वभाव

(श्रीमद्भगवद्गीता के दैवासुरसम्पद्विभाग योग नामक सोलहवें अध्याय की पाँचवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के चौथे श्लोक की व्याख्या इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान अर्जुन से आसुरी लक्षणों से युक्त व्यक्तित्व के विषय में चर्चा करते हैं। वे अर्जुन से कहते हैं कि दंभ करना, दर्प करना, अभिमान करना, क्रोध करना, कठोर होना एवं अज्ञानी होना—ये सभी आसुरी संपदा से युक्त मनुष्यों के लक्षण हैं। दंभ का अर्थ है कि जो हम नहीं हैं, वैसा स्वयं को दिखाने का प्रयत्न करना। जो हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है, उस चेहरे को प्रकट करने का प्रयास करना दंभ कहलाता है। नकली चेहरा दिखाने की कोशिश में जैसा आचरण व्यक्ति करने लगता है; वह आचरण दंभ कहलाता है। दंभ को पहला आसुरी लक्षण बताने के बाद भगवान श्रीकृष्ण घमंड को दूसरा लक्षण बताते हैं। सामान्य भाषा में दंभ व दर्प समानार्थी के रूप में प्रयुक्त होते हैं; जबकि सत्य इसके विपरीत है। दंभ व्यक्ति को उसका होता है, जो उसके पास नहीं है, जबकि अभिमान, घमंड या दर्प उसका होता है, जो उसके पास है। जैसे किसी को पद का अभिमान होता है तो किसी को प्रतिष्ठा का। कोई पैसे के अभिमान में दिखता है तो कोई अपने सौंदर्य के अभिमान में मदहोश होता है। श्रीभगवान इन सारे अभिमानों को आसुरी लक्षणों से युक्त व्यक्तित्व की निशानी बताते हैं।

श्रीभगवान इसके आगे क्रोधी एवं कठोर हृदय वाले व्यक्ति को भी आसुरी स्वभाव का बताते हैं। सच यह है कि ये दोनों ही लक्षण—एकदूसरे से अविच्छिन्न हैं। जिसके अंतस् में क्रोध है, उसकी वाणी व आचरण स्वाभाविक रूप से कठोर हो जाते हैं। करुण हृदय वाले व्यक्ति द्वारा क्रोध कर पाना संभव नहीं हो पाता है। इन सब लक्षणों को बताने के बाद भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि अज्ञानी व्यक्ति भी आसुरी लक्षणों से ही युक्त होता है। यह बिलकुल सही है। जो अज्ञानी है, वही व्यक्ति दंभी, अभिमानी, पाखंडी, घमंडी, क्रोधी एवं कठोर हो सकता है। दैवी संपदा से युक्त व्यक्ति में ऐसे अवगुणों की उपस्थिति की तनिक भी संभावना नहीं होती। ये सारे लक्षण आसुरी संपदा वाले व्यक्ति के लक्षण हैं।]

इतना कहने के बाद श्रीभगवान आगे कहते हैं कि—

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव॥ 5॥

शब्दविग्रह—दैवी, सम्पत्, विमोक्षाय, निबन्धाय, आसुरी, मता, मा, शुचः, सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातः, असि, पाण्डव।

शब्दार्थ—दैवी संपदा (**दैवी, सम्पत्**), मुक्ति के लिए और (**विमोक्षाय**), आसुरी संपदा (**आसुरी**), बाँधने के लिए (**निबन्धाय**), मानी गई है (**मता**), इसलिए (**अतः**), हे अर्जुन! तू (**पाण्डव**), शोक मत कर (**मा, शुचः**), क्योंकि तू (**यतः**), दैवी संपदा को (**दैवीम्, सम्पदम्**), लेकर उत्पन्न हुआ (**अभिजातः**), है (**असि**)।

अर्थात—दैवी संपत्ति मुक्ति के लिए और आसुरी संपत्ति बंधन के लिए मानी गई है। हे पांडव! तुम दैवी संपत्ति को प्राप्त हुए हो, इसलिए तुम कदापि शोक या चिंता न करो। यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण श्लोक है। वे कहते हैं कि यह मनुष्य का जीवन दो तरह की संभावनाओं के मध्य उपस्थित है।

यदि मानवीय व्यक्तित्व पतन एवं पराभव की ओर बढ़ चले—जहाँ हमारे विचार, भावनाएँ, सोच, आचरण

विकृत, दूषित एवं निकृष्ट होते चलें तो फिर भले से व्यक्ति की आकृति एवं संरचना न बदलें, पर तब भी उसकी चेतना व व्यक्तित्व इतने संकीर्ण व क्षुद्र हो जाते हैं कि वह व्यक्ति दुष्ट, नराधम, पापी, अपराधी बन जाता है। श्रीभगवान कहते हैं कि दुर्गुण और दुराचाररूपी इन आसुरी लक्षणों से युक्त व्यक्ति अधोगामी सांसारिक बंधनों में फँसकर अपने जीवन को एक दुर्भाग्यपूर्ण त्रासदी में बदल देता है।

इसके विपरीत भी एक संभावना है, जिसकी ओर इशारा भगवान श्रीकृष्ण इस श्लोक में करते हुए कहते हैं कि यदि व्यक्ति का चिंतन परिष्कृत हो जाए, भावनाएँ पवित्र हो जाएँ, व्यक्तित्व परिशोधित हो जाए तो फिर व्यक्ति की आकृति या संरचना बदले-न-बदले, पर उसकी चेतना उच्चस्तरीय हो जाती है। ऐसा व्यक्ति फिर देवतुल्य हो जाता है। ऋषि, मुनि, संत, साधक, सुधारक, शहीद—ऐसे ही व्यक्तित्वों का परिचय अपने जीवन से देते नजर आते हैं।

श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि ऐसे दैवी गुणों से युक्त व्यक्तित्व जिनका वर्णन वे प्रथम से लेकर तृतीय श्लोक में कर चुके हैं—ऐसे व्यक्तित्व संसार के बंधनों से मुक्त होकर सर्वशक्तिमान परमात्मा से मिल जाते हैं अर्थात मुक्त हो जाते हैं। वे अर्जुन को आश्वासन देते हैं कि चूँकि अर्जुन स्वभाव से ही दैवी संपदा को लेकर पैदा हुए हैं, अतः उन्हें किसी प्रकार के शोक को करने की आवश्यकता नहीं है।

यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ये दोनों स्वभाव; चाहे वे दैवी हों या आसुरी—ये दो विभिन्न व्यक्तित्व नहीं हैं। ये एक ही व्यक्ति में उपस्थित दो विभिन्न चेतना की स्थितियाँ हैं। यदि चेतना का रूपांतरण हो जाए तो व्यक्ति को बदलते, नर को नारायण बनते देर नहीं लगती। ऐसा होते ही हत्या करने वाला व्यक्ति ऋषि बन जाता है। अंगुलिमाल—भिक्षु बन जाता है, कामांध तुलसीदास—मानसकार बन जाते हैं, बिल्वमंगल—सूरदास बन जाते हैं और विश्वरथ—विश्वामित्र बन जाते हैं।

जब तक व्यक्ति आसुरी लक्षणों से स्वयं को बाँधे हुए है, तभी तक संसार के बंधन हैं। ये लक्षण ही हमारी बेड़ियाँ हैं। ये ही हमारी जंजीरें हैं। इनके खुलते ही हम भी मुक्त, स्वतंत्र हो जाते हैं। व्यक्ति के रूप में हम नहीं बदलते, पर व्यक्तित्व के रूप में बदल जाते हैं। इस व्यक्तित्व के परिष्कार को, चेतना के रूपांतरण को ही श्रीभगवान **मोक्ष** कहते हैं, **मुक्ति** कहते हैं।

सामान्य रूप से हम अपने बंधनों के लिए किसी और को दोष देना चाहते हैं। कभी किसी दूसरे व्यक्ति को, कभी भाग्य को, कभी तांत्रिक क्रिया को तो कभी भगवान को भी दोषी ठहराने से हम नहीं चूकते। सत्य यह है कि ये बंधन की और मुक्ति की अवस्था एक ही व्यक्ति की दो स्थितियाँ हैं, स्वभाव के दो किनारे हैं। आसुरी स्वभाव, भगवान श्रीकृष्ण उसे कहते हैं, जो हमें संसार से भवबंधनों से बाँधता हो। दैवी स्वभाव, भगवान श्रीकृष्ण उसे कह रहे हैं, जो हमें मुक्त कराता हो। ये दोनों ही चेतना की दो अवस्थाएँ हैं और यह पूर्णरूपेण मनुष्य के हाथ में है कि वह कौन-सी अवस्था में रहना स्वीकार करता है। बंधन या मुक्ति, इनमें से हम किसे चुनते हैं, यह निर्भर हम पर ही करता है।

चेतना की स्वतंत्रता, चेतना का आरोहण—मुक्ति का आधार है एवं दैवी संपदा की उपस्थिति से ऐसा हो जाता है। यदि जड़ता का आधिपत्य हो तो व्यक्ति तामसिक गुणों से बँधकर आसुरी लक्षणों से युक्त हो जाता है। इस दृष्टि से देखें तो ऐसा भी कहा जा सकता है कि मूल दोष एकमात्र है, जो संपूर्ण आसुरी संपत्ति को उत्पन्न करता है और मूल गुण भी एकमात्र है—जिससे संपूर्ण दैवी संपत्ति प्रकट होती है।

मूल दोष—शरीर, इंद्रियों को सब कुछ मानकर, अज्ञान के वशीभूत होकर अहंकार की पूर्ति के लिए ईश्वर से विमुख होकर कर्म करना है; जबकि मूल गुण—सर्वत्र परमात्मा की सत्ता को स्वीकारते हुए, विवेक व वैराग्य का सहारा लेते हुए निष्काम भाव से ईश्वर के प्रति समर्पित होकर कर्म करना है। अभिमान हो तो अवगुण होते हैं। निरभिमान, निरासक्ति तो स्वयं ही गुण समान हैं।

अर्जुन, दैवी संपदा से युक्त हैं। अतः श्रीभगवान उनसे 'मा शुचः' अर्थात शोक न करो ऐसा कहते हैं, ताकि वो यह याद कर सकें कि उनमें कौन-सी संभावना है। दैवी संपदा से युक्त व्यक्तित्व भी कभी-कभी अपना जीवनोद्देश्य भूल बैठते हैं, जैसे हनुमान जी भूल बैठे थे, तब जांबवंत ने उन्हें वह याद दिलाया था। वैसे ही श्रीभगवान अर्जुन को उनमें उपस्थित दैवी संभावना से परिचित कराते हैं। यह ही इस श्लोक का सूत्रसार है। ❑

प्राणायाम से साधें स्वस्थ शरीर

महर्षि पतंजलि को प्राचीनकाल से भारतवर्ष में प्रचलित योग की विधा को सुव्यवस्थित करने एवं वैज्ञानिक आधार देने का श्रेय जाता है। पतंजलि योग मूलत: मन को लेकर चलता है, लेकिन व्यक्तित्व का कोई भी आयाम इससे अछूता नहीं है। शरीर व प्राण भी इसमें अपना यथोचित स्थान पाते हैं। वास्तव में यह मन पर कार्य करने से पूर्व की तैयारी है। शरीर के लिए आसन, तो प्राणतत्त्व की शुद्धि एवं संवर्द्धन के लिए प्राणायाम की व्यवस्था यहाँ पर है, जो साधक को योग के उच्चस्तरीय प्रयोग के लिए तैयार करते हैं।

पतंजलि के अष्टांगयोग में यम-नियम और आसन के बाद प्राणायाम चौथे चरण में आता है। इसका उद्देश्य प्राण को स्थिर कर मन को धारणा-ध्यान के अनुकूल बनाना है; क्योंकि प्राण का मन से सीधा संबंध है। यदि प्राण चंचल है, अस्थिर है तो मन भी तदनुरूप ही आचरण करता है। यदि प्राण पुष्ट होता है तो मन भी पुष्ट होता है। प्राण की अशुद्धि साधना में एक बड़ी बाधा मानी जाती है। प्राणायाम इसका मैल दूर कर मन को ध्यान के अनुकूल बनाने में सहायक बनता है।

वस्तुत: प्राण एक सूक्ष्मतत्त्व है, जिसको हम अपने श्वास-प्रश्वास के रूप में अनुभव करते हैं और इसे प्राणवायु का नाम देते हैं। जिस प्रकार पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश के रूप में पंचतत्त्वों का भौतिक स्वरूप होता है; ऐसे ही प्राण, विचार, बुद्धि, आत्मा, परमात्मचेतना के रूप में पाँच सूक्ष्म चैतन्य तत्त्व हैं, जिनमें प्राण सबसे प्रत्यक्ष एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। प्राणायाम की यौगिक विधा इसी के परिशोधन एवं संवर्द्धन के इर्द-गिर्द केंद्रित रहती है।

प्राण के कारण ही समस्त सजीव विग्रहों को प्राणी का नाम दिया जाता है। प्राण के शरीर से निकलते ही उसे निष्प्राण घोषित किया जाता है। इस काया में निश्चित मात्रा में प्राण की मात्रा के कारण हमारी गतिविधियाँ चलती रहती हैं। इसके विकृत होने पर तमाम तरह की आधि-व्याधियाँ एवं विसंगतियाँ उत्पन्न होती हैं। प्राण सूक्ष्मनाड़ियों के माध्यम से काया में प्रवाहित होता है। प्राणायाम द्वारा इन नाड़ियों में प्रवाहित अशुद्ध प्राण की शुद्धि होती है। प्राण का विस्तार होता है तो व्यक्ति प्राणवान बनता है। पृथ्वी में प्राण का स्रोत सूर्य—सविता को माना गया है। प्राणायाम की विधा में जाने-अनजाने उस महाप्राण से जुड़ने का भी अभ्यास होता है, जो व्यक्ति को हर दृष्टि से बलशाली, तेजस्वी और सशक्त बनाता है।

पातंजल योगसूत्र में आसन की सिद्धि होने के बाद श्वास और प्रश्वास की गति के स्थित हो जाने को प्राणायाम के रूप में परिभाषित किया गया है। इसके आधारभूत घटक हैं—रेचक, पूरक और कुंभक। पूरक में व्यक्ति नासिकाग्र से श्वास लेकर फेफड़ों को पूरी तरह से भरता है। कुंभक में लिए हुए श्वास को कुछ देर रोकता है। रेचक में इसे बाहर छोड़ता है और फिर बाह्य कुंभक में रोकता है। इसी तरह से क्रम चलता रहता है व इसकी विधि एवं भेद के आधार पर प्राणायाम का वर्गीकरण किया जाता है।

इस क्रम में प्राणायाम के साथ फेफड़ों का व्यायाम भी होता है। मालूम हो कि फेफड़ों में मधुमक्खी के छत्ते की तरह करोड़ों वायुकोष्ठ विद्यमान होते हैं। सही ढंग से श्वास न लेने के कारण व प्रयोग में न आने के चलते ये वायुकोष्ठ अशक्त हो जाते हैं। इनकी निष्क्रियता के चलते समय आने पर रोगाणुओं का शिकार होने पर फेफड़ों को रोगों का घर बना देते हैं। फेफड़ों की कमजोरी व तपेदिक जैसे रोग इसी कारण पनपते हैं। प्राणायाम के साथ लिया गया गहरा श्वास इन वायुकोष्ठों को सक्रिय बनाता है, इन्हें जीवंत करता है और फेफड़ों को सशक्त बनाता है।

प्राणायाम की प्रक्रिया में लिए गए गहरे श्वास के साथ पेट के अंग-अवयवों के साथ ही नाभि स्थित सूर्यचक्र की मालिश होती है, जिसके कारण शरीर की अंत:स्रावीय ग्रंथियाँ सक्रिय हो जाती हैं और तदनुरूप स्वास्थ्य लाभ देती हैं। प्राणायाम के साथ प्राण का प्रवाह इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों से होता हुआ प्रवाहित होता है तथा इनका सम्मिलित प्रभाव सुषुम्ना नाड़ी को सक्रिय करता है, जिसके सूक्ष्म मनो-आध्यात्मिक लाभ व्यक्ति को मिलते हैं। पातंजल योगसूत्र

के अनुसार प्राणायाम की फलश्रुति प्रकाश अर्थात ज्ञान के आवरण का क्षीण होना बताया गया है।

आचार्यश्री के शब्दों में योगी साधक का जैसे-जैसे प्राणायाम का नियमित अभ्यास प्रवर्द्धित होता रहता है, वैसे-वैसे उसके संचित कर्म, संस्कार एवं अविद्याजनित क्लेश-विकारादि जो कि ज्ञान के आवरण रूप हैं, ये सभी क्षीण होते चले जाते हैं। जिस प्रकार अग्नि द्वारा तप्त हुए स्वर्ण के समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार योगी के समस्त आवरण प्राणायाम के अभ्यास से नष्ट हो जाते हैं। प्राणायाम के दीर्घकालीन नियमित अभ्यास द्वारा ही मन में धारणा की योग्यता आ जाती है अर्थात साधक योग के उच्चस्तरीय प्रयोग के लिए तैयार होता है।

इन लाभों को देखते हुए हमारे ऋषि-मुनियों ने त्रिकाल संध्या के विधान में प्राणायाम की विधा को अनिवार्य रूप से शामिल रखा, ताकि हर साधक कुछ मिनट तक नियमित इनका अभ्यास करता रहे। प्राणायाम की बहुत सारी विधियाँ बताई गई हैं, जिन्हें व्यक्ति की स्थिति एवं आवश्यकता के अनुरूप प्रयुक्त किया जा सकता है, लेकिन किसी विशेषज्ञ के मार्गदर्शन में ही इनका प्रयोग किया जाए तो उचित रहता है। परमपूज्य गुरुदेव ने सर्वसाधारण के लिए इसकी सरलतम किंतु प्रभावशाली विधि प्राणाकर्षण प्राणायाम बताई है।

प्राणाकर्षण प्राणायाम के लिए प्रातःकाल शौच-स्नान आदि नित्यकर्मों से निवृत्त होकर सुखासन में ध्यान की अवस्था में आँख बंद करके बैठें। मन को विचारों से शून्य कर कल्पना करें कि चारों ओर प्राणों का महासमुद्र लहलहा रहा है और हम इसके बीच में बैठे हुए हैं। अब स्वाभाविक गति से नाक के दोनों नथुनों से श्वास खींचते हुए भावना करें कि चारों ओर विद्यमान प्राण हमारे श्वास के साथ अंदर प्रवेश कर रहा है और अंग-प्रत्यंग में व्याप्त हो रहा है। श्वास को थोड़ी देर अपनी क्षमतानुसार रोके रहें और फिर धीरे-धीरे बाहर निकालें। यह प्रक्रिया प्रारंभ में पाँच-सात बार दोहराएँ, जिससे कि कोई थकावट या भार प्रतीत न हो। इसकी आवृत्ति और समय को धीरे-धीरे बढ़ाया जा सकता है। नियमित रूप से इस अभ्यास का स्वास्थ्य पर अद्भुत प्रभाव परिलक्षित होगा और भीतर एक नई शक्ति का संचार अनुभव होगा।

इसमें कुछ सावधानियाँ बरतना आवश्यक है। जो भी प्रक्रिया करें, धीरे-धीरे आरंभ करें। अपनी क्षमता देखते हुए धीरे-धीरे आवृत्ति एवं समय को बढ़ाएँ। इसमें जल्दबाजी एवं अति न करें व साथ ही इसका समुचित लाभ लेने के लिए नियमितता को बनाए रखें। स्थान स्वच्छ एवं हवादार हो। प्रदूषित वातावरण में इस प्रयोग को न करें। क्रिया के साथ भाव को जोड़ने का प्रयास करें, जो कि इसका प्राण रहता है। बिना भाव के मात्र क्रिया का भी भौतिक लाभ तो मिलता है, लेकिन भाव जोड़ने पर इसका समग्र लाभ सुनिश्चित होता है। ❑

रामानुज शास्त्रों के परम ज्ञाता और भावुक भगवद्भक्त थे। एक दिन वे मंदिर की परिक्रमा कर रहे थे कि अचानक मैले-कुचैले वस्त्र पहने एक महिला उनके सामने आ गई। उन्हें लगा कि यह महिला बिना नहाए-धोए आई होगी। उन्होंने अहंकारपूर्वक उसे डाँटते हुए कहा—"मार्ग को क्यों अपवित्र कर रही हो?" वह महिला बोली—"आप पवित्र हैं, भगवान का यह मंदिर पवित्र है, भक्तों के चरणों के कारण इस मार्ग की धूल भी पवित्र हो गई है, फिर मैं अपनी अपवित्रता लेकर कहाँ जाऊँ, आप ही बताएँ।" महिला के शब्दों ने रामानुज को झकझोर डाला। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—"माँ! तुम ठीक कहती हो। वास्तव में मैंने आप जैसी भावनाशील को अपवित्र कहकर घोर अधर्म किया है। मैं आपकी भक्ति की पवित्रता को पहचान नहीं पाया। मुझे माफ कर दें।"

सेवा ही सच्चा धर्म है

जिस काल में गौतम बुद्ध हुए, उस समय न सिर्फ उनके संदेशों का अनुकरण करने वाले लोग थे, बल्कि उन्हें नकारने वाले और उनके विरोधी भी मौजूद थे। आज हम बुद्ध के संदेशों का विरोध करने वाले लोगों के नाम तक नहीं जानते हैं। हजार वर्षों से भी अधिक समय बीत जाने के बावजूद बुद्ध के ज्ञान और संदेश की मशाल अब भी जल रही है। कहने का अर्थ यह है कि हमें विरोध करने वाले या बुरा करने वाले लोगों की जरा-भी परवाह नहीं करनी चाहिए।

हाँ! यह जरूर ध्यान रखना होगा कि कुछ बुरे लोगों के प्रभाव में आकर हम अपने अच्छे गुणों का परित्याग न कर दें। लोग आएँ-जाएँ कोई फरक नहीं पड़ता है। दया, प्रेम, करुणा का पाठ जिस किसी ने पढ़ा और पढ़ाया, वह अमर हो गया। भारत ने जो सहिष्णुता, अहिंसा, दया, प्रेम और वसुधैव कुटुंबकम् का संदेश दिया है, उनके बीज यदि हर इनसान अपने अंतर्मन में बो ले तो संपूर्ण देश-समाज प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। किसी भी व्यक्ति की बुरी बातों या बुरे आचरण से प्रभावित होने का तो सवाल ही नहीं उठता है।

इन दिनों युवा पीढ़ी अधीर दिखाई देती है। कुछ लोग इसके लिए तकनीक को जिम्मेदार ठहराते हैं। वे मानते हैं कि सोशल साइट्स पर व्यस्त युवा मानव धर्म को भूल चुके हैं। तकनीक अपने आप में बढ़िया चीज है। इसने हमारे जीवन को आसान बनाया है, परंतु यह हम पर निर्भर करता है कि हम इसका इस्तेमाल किस तरह करते हैं। यदि हम इसका प्रयोग विध्वंसात्मक कार्यों के लिए करते हैं तो यह निकृष्ट औजार साबित हो सकता है। वहीं यदि इसका उपयोग रचनात्मक कार्यों या मानवता की सेवा के लिए किया जाता है तो यह एक उत्कृष्ट औजार भी बन सकता है। हमें मानवता की सेवा को जीवन का सर्वोत्कृष्ट ध्येय बनाना चाहिए।

यह सच है कि किसी व्यक्ति में दया, क्षमा, करुणा, अहिंसा या मानवता के प्रति प्रेम जैसे भाव एक दिन में जगाए या पैदा नहीं किए जा सकते हैं। इसके लिए निरंतर प्रयास करते रहना चाहिए। इसके बीज माता-पिता को बचपन से ही डालने चाहिए। समग्र रूप से स्वयं को ज्ञान के माध्यम से जाग्रत करना चाहिए। स्वयं को अच्छे कर्मों के प्रति मोड़ना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति किसी समूह या समुदाय की भलाई के कार्यों में कुछ घंटों के लिए भी स्वयं को समर्पित कर देता है, तो निश्चित ही उसमें दया या क्षमा के भाव उत्पन्न होंगे। ऐसे लोगों में ही अपनी सभ्यता, संस्कृति और दूसरों के प्रति प्रेम-आदर का भाव पनपता है। हमें समाज की भलाई करते समय यह जरूर सोचना चाहिए कि यह कार्य स्वयं की संतुष्टि के लिए ही नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी कर रहे हैं। इसके लिए हमें यदि स्वयं में बदलाव लाना पड़े तो वह भी कोशिश जरूर करनी चाहिए।

हमने कभी पशुओं के झुंड पर गौर किया है। कुछेक उदाहरणों को छोड़कर हम पाएँगे कि समूह में वे बहुत प्यार और सद्भाव के साथ रहते हैं; जबकि हमें तो छोटी-छोटी बात पर क्रोध आता रहता है। हम दूसरों से तो अपेक्षा रखते हैं, पर जब हमारी अपेक्षाएँ पूरी नहीं हो पातीं तब हमें क्रोध आता है। क्रोध समाज को बाँटता है। वहीं दया और सभी के प्रति प्रेम का भाव किसी से कोई अपेक्षा रखना नहीं सिखाता है। आज के इस समय में युवाओं के ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। अधीरता और क्रोध के बजाय उन्हें अपनी समस्याओं का समाधान अहिंसा, दूसरों के प्रति सम्मान, प्रेम का भाव प्रकट करने से मिल सकता है। यदि वे ऐसा करने लगेंगे तो समाज में किसी प्रकार की हिंसा भी नहीं होगी।

सुख और दु:ख के लिए मन ही जिम्मेदार है। तन तथा वचन से किए जाने वाले कर्म के अलावा, कर्म मन से भी किया जाता है। मन से किए गए कर्म का प्रभाव सबसे अधिक होता है। बाकी सब कर्म केले के पौधे के समान हैं, जो केवल एक बार फल देते हैं। मन के कर्म बार-बार फलते रहते हैं। अगर हम अपने मन में क्रोध व ईर्ष्या रखेंगे तो मन के कर्म खराब होंगे।

इससे दूसरे लोगों के साथ-साथ स्वयं को भी नुकसान होगा। अनगिनत जीवधारियों में मानव सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि वह चिंतन कर सकता है। ईर्ष्या, बैर व द्वेष को मन से निकालकर चिंतन के माध्यम से इसे परिष्कृत एवं परिमार्जित किया जा सकता है। यह हम पर निर्भर करता है कि हम प्रेम से अपने क्रोध पर विजय प्राप्त करते हैं या फिर क्रोध के वशीभूत होकर प्रेम को मरने देते हैं।

मन के शोधन के लिए ज्ञान सबसे उपयुक्त है। ज्ञान ही हमें जागरूक बना सकता है, भले ही यह समयसाध्य हो। ज्ञान से परिपूर्ण होने में दस या बीस साल भी लग सकते हैं, इसके लिए तो जन्म भी बीत सकता है, लेकिन हमें चमत्कार की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हम जितने जागरूक रहेंगे, उतना ही ज्ञान से पूर्ण रहेंगे। इस प्रकार आस-पास का वातावरण माने नहीं रखता है। कीचड़ में ही कमल खिलते हैं। हमें इस बात को बार-बार दोहराना चाहिए कि हमें दयापूर्ण बनना है। कैसे बनना है, यह सीखना चाहिए।

हम बाह्य संसार में शांति तब तक नहीं पा सकते हैं, जब तक कि हम अपने आप को शांत और प्रेममय नहीं बना लेते। अपनी क्षमताओं को जानकर और उसमें विश्वास करके ही हम एक बेहतर विश्व का निर्माण कर सकते हैं। कभी-कभी लोग कुछ कहकर अपनी प्रभावशाली पहचान छोड़ जाते हैं और कभी-कभी लोग शांत रहकर भी एक सार्थक छाप छोड़ जाते हैं। अगर हम दूसरों की मदद कर सकते हैं तो जरूर करें। अगर हम किसी की मदद नहीं कर सकते हैं तो कम-से-कम उन्हें नुकसान तो न पहुँचाएँ। जब हम दूसरों की ओर प्यार और दया की भावना से देखते हैं तो यह भावना हमारी आंतरिक खुशी और शांति बनाए रखने में मदद करती है। मानवता की सेवा ही सच्चा धर्म है। इससे बड़ा और कुछ नहीं है। सेवाभाव मनुष्य के अंदर मनुष्यता को जन्म देता है। इसी कारण मानव में मानवता पनपती है। जिस दिन हम सेवा को ही सच्चा धर्म मानने लगेंगे तो मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण की संभावना सुनिश्चित है। ❑

हिमालय की तराई में दो संन्यासी साथ-साथ रहते थे। उनमें एक वृद्ध और दूसरा नौजवान था। एक बार वे कई दिनों की तीर्थयात्रा के पश्चात जब अपने ठिकाने पर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि हवा-आँधी ने उनकी कुटिया को तबाह कर दिया है। यह देख युवा संन्यासी बड़बड़ाने लगा—''जो छल-फरेब करते हैं, उनके मकान सुरक्षित हैं और हम जो दिन-रात प्रभुस्मरण करते हैं, हमारी कुटिया तहस-नहस हो गई।''

वृद्ध संन्यासी बोला—''दुःखी मत हो। इसमें भी कुछ अच्छा ही होगा।'' पर युवा संन्यासी वृद्ध की बात से सहमत नहीं हुआ। वह दुःखी होकर रातभर जागता रहा; जबकि वृद्ध सुबह सोकर उठा तो बोला—''धन्यवाद ईश्वर आज खुले आसमान के नीचे बहुत अच्छी नींद आई, काश यह छप्पर पहले उड़ गया होता।'' इस पर युवा संन्यासी बोला—''एक तो कुटिया नहीं रही, ऊपर से आप ईश्वर को धन्यवाद दे रहे हैं।'' वृद्ध बोला—''तुम हताश हो गए और इसलिए रातभर जागते रहे और दुःखी रहे। मैं प्रसन्न था, इसलिए चैन की नींद सो गया।'' इनसान को हर परिस्थिति में प्रसन्न रहना चाहिए।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—3

गायत्री की पंचकोशी साधना

(समापन किस्त)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अपने इस विशिष्ट उद्‌बोधन में सभी साधकों का मार्गदर्शन करते हुए कहते हैं कि गायत्री की पंचकोशी साधना का मूल उद्‌देश्य व्यक्तित्व का समग्र एवं समुचित रूपांतरण है। वे समस्त गायत्रीसाधकों को पुनः यह स्पष्ट करते हैं कि आध्यात्मिक उत्कर्ष का आधार हमारे वैचारिक एवं आत्मिक परिवर्तन से निर्धारित होता है, बाह्य कर्मकांडों एवं उपचारों से नहीं। वे सर्वप्रथम अन्नमय कोश के जागरण की साधना साधकों को बताते हुए कहते हैं कि अन्नमय कोश की साधना संयम से पूर्ण की जाती है। संयम ही अन्नमय कोश के जागरण का मूल आधार है। इसके अतिरिक्त शारीरिक क्षमताओं का एवं योग्यताओं का सम्यक एवं उचित उपयोग भी अन्नमय कोश की शुद्धि का आधार बनता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

प्राणमय कोश की उपासना

मित्रो! कमाल है। किसका? मेहनत का, मशक्कत का। देवता आपके पीछे-पीछे फिरते हैं। आप उस देवता की ओर ध्यान नहीं देते हैं। बाहर वालों की ओर ध्यान दे रहे हैं। आप बाहर वाले देवता की पूजा करने जा रहे हैं और घर का देवता मारा-मारा फिर रहा है। वह ठोकरें खाता फिरता है। इस अन्नमय कोश को आप ध्यान नहीं देते। दूसरा वाला देवता है, जिसको हम प्राणमय कोश कहते हैं। प्राणमय कोश क्या होता है? प्राणमय कोश का साइंटिफिक रीजन मैं फिर बताऊँगा। यह हमारा भीतरी शरीर है। इन शरीरों को कैसे जाग्रत करना चाहिए? इसका एक साइंटिफिक तरीका है। मैं आपको इनकी उपासना की विधि और सारी चीजें बता दूँगा। मेरे पास प्रोसीजर है और जब मैं मरूँगा तो कहीं-न-कहीं लिख करके जाऊँगा कि अमुक कोश को जगाने के लिए क्या करना होता है? उपासना करने की विधियाँ क्या हैं? यह सब मैं बताकर जाऊँगा। इस जमाने के लिहाज से उपासना किस तरीके से की जानी चाहिए? यह मैं अपने जीवन में प्रयोग करने में लगा हुआ हूँ। पुरानी पद्धतियों में उधेड़बुन करके जाऊँगा। प्राणमय कोश का जागरण कैसे किया जाता है? प्राणमय कोश की विधियाँ क्या हैं? बेटे, मैं सब बता दूँगा। हम ऐसी विधियाँ बता देंगे, जिनसे फायदा हो सकता है। लेकिन ध्यान रखना, केवल कर्मकांड और विधियाँ काफी नहीं हैं। उनके साथ-साथ में जमीन बनानी पड़ेगी। जमीन अगर हमारे पास नहीं है, तो जो विधियाँ मैं बताऊँगा, वे कोई फल नहीं देंगी।

मित्रो! कुंडलिनी जागरण की विधियाँ मैं तब बता सकता हूँ, जब आपके जीवन का क्रम बदले। जीवन का क्रम इतना गंदा, इतना फूहड़ आपने बना रखा है कि इसमें बीज उगेगा कहाँ से? मैं आपसे बार-बार कहता हूँ कि आपको किसी और झगड़े में पड़ने की जरूरत नहीं है। नहीं गुरुजी! कर्मकांड बता दीजिए। बेटे! कर्मकांड मेरी जेब में सुरक्षित रखा है। रामकृष्ण परमहंस से विवेकानंद ने यह पूछा कि उपासना बता दीजिए, कर्मकांड बता दीजिए। उन्होंने कहा—कर्मकांड बताने की कोई जरूरत नहीं है। हम अपना सारे-का-सारा कर्मकांड तुम्हें सौंप सकते हैं और रामकृष्ण परमहंस ने सारे-का-सारा विधि-विधान उन्हें सौंप दिया था। रामकृष्ण के आखिरी समय में विवेकानंद देखने लगे कि आप तो जा रहे हैं, अब हमारा क्या होगा? उन्होंने

हाथ उठा करके उनके सिर के ऊपर रखा। उन्होंने देखा कि सारी-की-सारी जमीन घूमने लगी और सूरज के तरीके से सब चमकने लगा। वे पूछने लगे—गुरुदेव! यह क्या हो रहा है? क्या हो रहा है—अरे! हमारे पास जो धरोहर थी, शक्ति थी, वह सब कुछ दे करके हम जा रहे हैं। हमारे पास जो कुछ भी था, सब दे दिया है। अब हमारे पास कुछ भी नहीं है।

मित्रो! क्या ऐसा संभव है? हाँ! बिलकुल संभव है। जिस तरीके से माँगने वाले याचक खड़े होते हैं और कहते हैं कि हमको देना चाहिए, हमको देना चाहिए। देने वाले उससे भी ज्यादा समझदार होते हैं। बालक चिल्लाता है कि हमको दूध मिलना चाहिए। गाय जब जंगल से चरकर आती है, तो भागती हुई चली आती है। उसे ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारा थन अब फटा। वह भी व्याकुल है कि हमको बच्चा मिले तो दूध पिला दें। देने वालों की कमी है क्या? नहीं, देने वालों की कमी नहीं है। संतों की कमी है? नहीं, कोई कमी नहीं है। अनुदान देने वाले, सहायता करने वाले बेटे! बहुत हैं, पर लेने वाले नहीं हैं। नहीं, महाराज जी! हमको दिला दीजिए। चल, पहले पात्रता तो विकसित कर। बेटे! गाय अपने थन का दूध, अपने बच्चे को पिलाती है, कुत्ते के बच्चे को नहीं। हमको सिद्धि दिला दीजिए। बेटे! पहले इस लायक पात्र तो बन, ताकि सिद्ध पुरुष, महात्मा, देवता अनुग्रह कर सकें।

पात्रता का विकास करें

मित्रो! पात्रता का विकास करने के लिए तप करना पड़ता है और तप करने के लिए हिम्मत चाहिए, साहस चाहिए और संकल्पवान होना चाहिए। पार्वती जी जब शंकर जी को पाने के लिए तप कर रही थीं। तब पार्वती जी के पास सप्तर्षि आए। उन्होंने कहा—"क्यों अपना समय नष्ट कर रही हो?" पार्वती जी बोलीं—"जब तक हमारा प्रण पूरा नहीं होता, तब तक हम तप करेंगी।" श्रेष्ठ कामों के लिए हिम्मत चाहिए। हिम्मत, ऐसा साहस जो डगमगा न पाए। पार्वती जी हिमालय की पुत्री थीं। उनका संकल्प अडिग था। सप्तर्षियों ने उनकी परीक्षा ली। उन्होंने कहा—"क्या फायदा ऐसे व्यक्ति के लिए तप करने से, जिसने कामदेव को भस्म कर दिया। जिसके पास खाने-पीने को भी नहीं है। न घर है, न कोई साधन? आप तो राजकुमारी हैं। सुख-सुविधाओं में पली हैं। आपको तो अनेक वर मिल जाएँगे।" आपको पता है कि फिर पार्वती जी ने क्या कहा? उन्होंने कहा—

जन्म कोटि लगि रगर हमारी।
बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥

एक जन्म नहीं, कोटि जन्म तक की प्रतीक्षा है। एक जन्म, दस जन्म, सौ जन्म, हजार जन्म, लाख जन्म नहीं, कोटि जन्म तक की बात है। हम उनको पाकर के रहेंगे, ऐसा दृढ़ निश्चय पार्वती जी का था। यह कार्य निष्ठावान, दृढ़ संकल्प, साहसवान का है। साहस श्रेष्ठ कार्य के लिए होना चाहिए। हमने तो निश्चय कर लिया है कि अपने प्रण से हटना नहीं है। किसी श्रेष्ठ काम को करने की, आदर्श काम करने की लोगों में कल्पना ही नहीं आती? किसी की

एक बालक को उसके पिताजी ने विद्याध्ययन हेतु गुरुकुल भेजा। बालक गुरुकुल में विद्या ग्रहण करने लगा। एक दिन गुरुजी ने बच्चे को एक पाठ याद करने हेतु दिया, परंतु बहुत प्रयत्नों के बाद भी उस बालक को वह पाठ याद नहीं हुआ। गुरुजी को उस पर बहुत गुस्सा आ गया—उन्होंने दंड देने के लिए छड़ी उठाई तो बालक ने अपना हाथ सामने कर दिया। गुरुजी ज्योतिषशास्त्र के प्रखर ज्ञाता भी थे। उन्होंने बच्चे का हाथ देखा तो उनका सारा क्रोध शांत हो गया, उन्होंने छड़ी रख दी। वे बच्चे से बोले—"बेटा! तुम्हारे हाथ में तो विद्या की रेखा ही नहीं है, इसीलिए तुम्हें पाठ याद नहीं हुआ। इसमें तुम्हारी गलती नहीं है। तुम कभी विद्या प्राप्त नहीं कर सकोगे।" यह सुनकर उस बालक ने नुकीला पत्थर उठाकर अपने हाथ पर रेखा खींच ली। आगे चलकर यही बालक संस्कृत के प्रख्यात विद्वान पाणिनि के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हिम्मत ही नहीं होती और हिम्मत भी की तो हमारे घरवाले नाराज हो जाएँगे। हमारी नानी नाराज हो जाएँगी। हमारे मुहल्ले वाले नाराज हो जाएँगे। इस तरह पानी के बबूलों के तरीके से हमारे सारे-के-सारे निश्चय और संकल्प मिट जाते हैं।

मित्रो! संकल्प मन से किए जाते हैं और उन्हें निभाने के लिए दृढ़ निश्चय की, साहस की आवश्यकता होती है। मन की गति को मैं नहीं जानता, लेकिन कहा जाता है कि मन में हजार हाथियों के बराबर शक्ति और साहस होता है। मन चंचल भी होता है और साहसी भी होता है। अगर मन से कुछ संकल्प कर लिया जाता है, तो उसे कोई ताकत पूरा करने से रोक नहीं सकती। हाँ, बाधाएँ तो आती हैं, पर संकल्पवान व्यक्ति उन्हें पार करके अपने लक्ष्य तक पहुँच ही जाता है। मैं सामान्य कार्यों की बात नहीं कर रहा। श्रेष्ठ कार्य निष्ठावान, निश्चयवान, साहसवान व्यक्ति ही कर पाता है। किसी से कुछ लेने के लिए नहीं कि हमने निश्चय कर लिया कि हम अमुक चीज लेकर ही रहेंगे। श्रेष्ठ काम, आदर्श काम, जिसको करने के लिए तो कल्पना ही नहीं आती। कुछ-कुछ कल्पना उठी भी तो जल्दी ही खतम हो जाती है। कभी हिम्मत ही नहीं पड़ी। अगर हिम्मत पड़ी भी तो घरवाले नाराज हो जाएँगे, बीबी नाराज हो जाएँगी, पड़ोसी नाराज हो जाएँगे। मुहल्ले वाले क्या कहेंगे कि देखो माला घुमाता है? पानी के बबूलों के तरीके से हिम्मत कहाँ गायब हो जाती है? समझ ही नहीं आता।

सिद्धांतों की जीत है सच्ची जीत

मित्रो! आप क्या सोचते हैं? क्या करते हैं? मैं नहीं जानता, लेकिन मन की शक्ति को तो कहते हैं कि हाथी के बराबर वह शक्तिशाली है। शरीर की दृष्टि से मैं नहीं कहता, लेकिन मन की दृष्टि से आदमी को बहुत मजबूत और हिम्मतवाला होना चाहिए। एक टिटिहरी और उसके बच्चे का साहस देखिए, हार-जीत मत देखिए। ईसामसीह को फाँसी पर-क्रास पर लटका दिया था, तो उनको हारा हुआ कहें या जीता हुआ कहें? आपके हिसाब से जीता हुआ हो या हारा हुआ हो, लेकिन मेरी दृष्टि में बेटे! वही आदमी सफल है, जो सिद्धांतों के लिए, आदर्शों के लिए अपनी जान गँवाना स्वीकार कर ले। वे आदमी हारे हुए नहीं, जीते हुए हैं। गांधी जी को गोली मार दी गई। उनको आप हारा हुआ मानेंगे या जीता हुआ मानेंगे? गणेश शंकर विद्यार्थी को कानपुर के दंगे में शहीद कर दिया गया। ऐसे व्यक्ति को आप हारा हुआ मानेंगे या जीता हुआ मानेंगे? आदमी का साहस ही क्या जो मौत का मुकाबला नहीं कर सकता? मुसीबतों का मुकाबला नहीं कर सकता? बेटे! जीतता वह है, जो सिद्धांतों पर चलता है और सिद्धांतों को जीता है और जो सिद्धांतों से हार गया, वह मरा हुआ आदमी है। वह शारीरिक दृष्टि से तगड़ा है, तो क्या और दुबला-पतला है तो क्या? इससे कोई फरक नहीं पड़ता। बात आदर्शों और सिद्धांतों को जीवन में समाविष्ट करने की है। आदमी की हिम्मत और साहस, उसे हर क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। अच्छे कामों के लिए, श्रेष्ठ कामों के लिए हिम्मत बनाकर चलिए।

मित्रो! अच्छे कामों के लिए, अच्छे सिद्धांतों के लिए पूरी हिम्मत और बहादुरी के साथ लगे रहेंगे, तो हमेशा मददगार मिलते रहेंगे। अगर हमारा इरादा गलत है, तो शुरू में एकाध मददगार मिलेगा, परंतु जब वह समझ लेगा कि इनका इरादा ठीक नहीं है, तो कहेगा कि अरे यह बेवकूफ है और उसका मजाक उड़ाएगा। सहयोग भी नहीं करेगा। अगर आपका इरादा नेक है और आप आदर्शों के लिए, सिद्धांतों के लिए जीते हैं, तो आपको अनुदान मिलते चले जाएँगे। आप सब महापुरुषों की हिस्ट्री देख लीजिए। श्रेष्ठ काम करने वालों की हिस्ट्री इसी बात पर टिकी रही है कि वे सिद्धांतों के लिए जिए हैं और सिद्धांतों के लिए मरे हैं। जो हिम्मत के साथ अपने सिद्धांतों पर डटे रहे, वे सफलता के शिखर तक पहुँचे। इस हिम्मत का नाम है—'प्राणमय कोश'। प्राणमय कोश की ताकत अगर हमारे पास हो, तो हम आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं। प्राणमय कोश की ताकत-प्राणमय कोश की शक्ति टैंकों से बड़ी है, रॉकेटों से बड़ी है, तोपों से बड़ी है, बंदूकों से बड़ी है। प्राणवान आदमी, हिम्मतवाला आदमी संकल्प के साथ में, जिस क्षेत्र में काम करने के लिए चल देता है, तो परिस्थितियाँ प्रतिकूल होने पर भी उसे आगे बढ़ने में कोई नहीं रोक सकता। वह अवरोधों को पार करता हुआ, अपने लक्ष्य तक पहुँच ही जाता है। वह हिम्मत के सहारे स्वयं भी आगे बढ़ता है और अनेकों को आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

मित्रो! दूसरों की ओर मत देखो। दूसरों का आसरा मत तको। दूसरों पर आश्रित मत रहो। अपना सहारा स्वयं

बनो और दूसरों को भी सहारा दो। यह क्या है? बेटे! यह स्वावलंबन की विधि है। आत्मनिर्भर बनो। यह वह विधि है, जो आपका काम पूरा करने की राह बनाती है। रुकावटें तो आएँगी, पर उनको पार करना और हिम्मत से मुकाबला करना आवश्यक है। यह हमारा देवता है, जिसको हम प्राणदेवता, हिम्मतवाला देवता कहते हैं। दुनिया में कितनी कथा-कहानियाँ हैं, जिसमें देवताओं ने उनकी सहायता की। वे देवता हमारे और आपके भीतर हैं। सबकी सहायता हिम्मत ने की। कहावत है—'हिम्मत-ए-मर्द तो मदद-ए-खुदा।' जो व्यक्ति हिम्मत करते हैं, उनकी सहायता भगवान करता है।

मनोमय कोश का जागरण

साथियो! तीसरा देवता एक और भी है, जिसको हम मनोमय कोश कहते हैं। मनोमय कोश किसे कहते हैं? यह हमारा मन है, मस्तिष्क है। यह इस बात पर टिका है कि हमारा मन कैसा है? भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में सीधा भी रहता है और उलटा भी रहता है। दोनों ही परिस्थितियों में हम अपने आप को काबू में रखें, तो रास्ता तलाश कर सकते हैं। अपने को कायम रख सकें, शक्ति इसी का नाम है। संतुलन इसी का नाम है। कभी हमारा काम ठीक चलता है, तो कभी हम कम काम करते हैं। परिस्थितियाँ हैं—कभी बिगड़ जाती हैं, तो कभी ठीक हो जाती हैं। इसके लिए घरवालों को, भाई-भतीजों को अथवा दूसरों को दोष न दें। हम अपने दिमाग को शांत रखें, स्थिर रखें और अपनी बात पर कायम रहें।

मित्रो! परिस्थितियाँ आती-जाती रहती हैं। इसमें हम क्या कर सकते हैं? परिस्थितियों का अंदाजा लगाना एक बात है और परिस्थितियों का मुकाबला करना एक बात है। परेशान होना और हैरान होना—ये अलग बातें हैं। एक मुसीबत तो यह थी कि आपके घरों में चोरी हो गई, मौत हो गई और एक मुसीबत यह है कि आपने शोर मचाना शुरू कर दिया। रोटी खाना बंद कर दिया। आपकी आँखें और खराब हो जाएँगी। जो मरा-सो-मरा, वह तो जिंदा होने वाला नहीं है। अब आप अस्पताल जाकर अपनी आँखें ठीक कराइए। नहीं साहब! रोना तो पड़ेगा। मित्रो! परिस्थितियाँ तो आती ही हैं। आदमी जिन परेशानियों को दूर करने में लगा रहता है, उनसे सीख नहीं लेता। हे राम! अब क्या करेंगे? कैसे रहेंगे? अपनी मनोभूमि ठीक करें। मन-बुद्धि से काम लें। परिस्थितियों से निपटने पर विचार करें। उन्हें काबू में करने की कोशिश करें। परंतु हम क्या करते हैं? हंगामा शुरू कर देते हैं। दहाड़ें मारते हैं और सारे-के-सारे घरवालों की नाक में दम कर देते हैं। हमें अपने दिमाग पर कंट्रोल ही नहीं है। सुख-दुःख तो आते ही रहते हैं। हम हर परिस्थिति में संतुलन बनाकर चलें। धैर्य और मनोबल से काम लें, तो जिंदगी में मजा आ जाए।

स्वाध्याय देवत्व के अभिवर्द्धन का, सूक्ष्मशरीर के परिष्कार का एक असाधारण उपाय है। गायत्री परिजनों को अनिवार्य रूप से युग निर्माण साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। कुछ समय इसके लिए पूजा-उपासना, आहार, स्नान आदि की तरह ही निर्धारित कर लेना चाहिए और कितने ही आवश्यक कार्यों की उपेक्षा कर इस आत्मिक आहार के लिए समय निकालना चाहिए। यह प्रेरक विचारधारा जिनके अंतःकरणों से निकलती है, वे इतने समर्थ हैं कि पाठक में अपनी ज्योति एवं प्रेरणा उत्पन्न कर सकें। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

मित्रो! मनोमय कोश में एक और बात जुड़ी हुई है और वह है—हमारा विवेक। दूर की बात सोच-समझकर चलें। जवानी में हम अपनी हर बात सबसे मनवाते हैं। क्या दूसरे की कोई इच्छा नहीं? नहीं साहब! हमारी मनमरजी ही चलेगी। जैसा हम कहेंगे, वैसा ही सबको करना पड़ेगा। सबसे अच्छा किसान है, जो अपने खेत में बीज बो देता है और छह महीने तक इंतजार करता है। मेहनत करता है और सोचता है कि परमात्मा जो करेगा, अच्छा करेगा। और वह सफल भी होता है। यह किसान की दूरदर्शिता है। इसी के साथ एक और चीज जुड़ी है, जो हमारे दिमाग से संबंध रखती है। उसका नाम है—कर्तृत्व। यह हमारे दिमाग का

काम है, हमारे मनोमय कोश का काम है। हमारे कर्तृत्व और हमारे फर्ज ऐसे होने चाहिए कि समाज हम पर गर्व करे। मनोमय कोश के ऊपर आपने नियंत्रण कर लिया, तो मैं यह कहता हूँ कि आप अपनी जिंदगी में यशस्वी होते चले जाएँगे। तेजस्वी होते हुए चले जाएँगे। और न जाने क्या-से-क्या होता चला जाएगा? अगर हम अपने दिमाग को संतुलित और नियंत्रित कर लें तब? अन्यथा हमारा मन दो कौड़ी के लोभ में फँसा रहता है और हम लोभ की दलदल में फँसते चले जाते हैं। मन ही हमारे अच्छे-बुरे कर्मों का जिम्मेदार है। हमारे नियंत्रित एवं संतुलित मन को बड़े-से-बड़ा प्रलोभन भी नहीं डिगा सकता।

विषम परिस्थितियों में संतुलन रखें

मित्रो! माँगने वाले की इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होतीं, बढ़ती ही जाती हैं। छाया के पीछे भागिए, छाया आगे-आगे भागती है। आप देवताओं से माँगते रहिए, पर अगर हमारा व्यक्तित्व और कर्तृत्व ठीक है, तो देवताओं को हमारी मदद करने में देर नहीं लगती। राम ने जब राक्षसों का संहार किया, तो देवताओं ने फूल बरसाए। मेघ बूँद-बूँद पानी बरसाते हैं और सागर, ताल-तलैया, बरतन सब भर जाते हैं। देवताओं से लेने की पात्रता भी होनी चाहिए। हर किसी को थोड़े ही उनके अनुदान मिलते हैं। मानसिक संतुलन का संबंध केवल मानसिक क्रियाकलापों से ही नहीं है, वरन परिस्थितियों से भी है। आप दिमाग से ठीक काम कर सकते हैं कि नहीं? जिम्मेदारियों का आप क्या करेंगे? आपकी परिस्थितियाँ बाधित होती हैं, तो आप अपने कर्त्तव्य पूरे कैसे करेंगे? बेटे! परिस्थितियों से तालमेल बैठाना आपके मन का काम है। आपका मन मनोमय कोश की सिद्धि है। मनोमय कोश की सिद्धि का चमत्कार यही है कि विषम परिस्थितियों में भी संतुलन बना रहे। मन में दृढ़ संकल्प हो तो सब ठीक हो जाता है।

मित्रो! सावित्री की कथा आपने सुनी होगी। उसके मन में एक ही बात थी कि मैं जैसी हूँ, वैसा ही मुझे पति मिल जाए। अनेक राजकुमार, राजा उसके पिता ने देखे। शक्ल से अच्छे, धन-वैभव सब होते हुए भी पुत्री के योग्य कोई नहीं दिखा। उन्होंने बेटी से कहा—"तुम स्वयं अपना वर तलाश करो।" सेना की एक टुकड़ी के साथ सावित्री रथ में बैठकर वर तलाशने निकली। जंगल में एक युवक उसे दिखा, जो लकड़ी काट करके ले जा रहा था। बड़ा ही तेजस्वी, देखकर उसने सेना को रुकने का आदेश दिया और युवक से पूछा—"आप कौन हैं?" उसने कहा—"हमारे माता-पिता जंगल में तप कर रहे हैं और हमने निश्चय किया है कि जब तक हमारे माता-पिता हैं, हम उनकी सेवा करेंगे। उन्हीं के साथ रहेंगे।" "गुणवान, विद्यावान, रूपवान होते हुए भी आप जंगल में रहते हैं। शादी क्यों नहीं की?" सावित्री ने कहा। उसने कहा—"हमने अपने माता-पिता की सेवा का संकल्प लिया है। सो मन, वचन और कर्म से उनकी सेवा करेंगे या अपनी गृहस्थी सँभालेंगे? सावित्री ने मन में दृढ़ निश्चय किया कि शादी तो इसी से करनी है। वापस आकर पिता को सब बताया। नारद जी ने कहा—"वह लड़का तो एकाध साल ही जिंदा रहेगा। तुम दूसरा कोई वर ढूँढ़ लो।"

मित्रो! सावित्री ने कहा—"अब तो कुछ भी हो, शादी तो हम सत्यवान से ही करेंगी।" सबने छान-बीन की और कहा—"घर उसके पास नहीं है। संपत्ति उसके पास नहीं है। उसके माँ-बाप का राज्य भी छिन गया है। खाने-पीने का ठिकाना नहीं है।" उसने कहा—"स्वाभिमान उसके पास है। हिम्मत उसके पास है।" जिसके पास मनोबल है, वह व्यक्ति इतना जबरदस्त है कि कोई उसका मुकाबला नहीं कर सकता। मैं तो यही कहता हूँ कि सावित्री उसी का वरण करेगी, जो सत्यवान है। निष्ठावान है, उसी की मदद सावित्री करेगी। गायत्री—सावित्री की पूजा अक्षत, पुष्प द्वारा की गई पूजा नहीं है, अपितु एक मानसिक वृत्ति है, ताकि लोभ और मोह से अपने आप को अलग रख सकें। अपनी दिनचर्या, अपने क्रियाकलापों पर ध्यान रखें। हमारे फर्ज क्या हैं? हमें क्या करना चाहिए? मानसिक वृत्तियों की ताकत इतनी जबरदस्त होती है कि उसने मौत-से-मुकाबला किया और मौत के देवता को भी मजबूर कर दिया कि वे अपना इरादा बदल दें। उसने केवल मजबूत मन की शक्ति के द्वारा पति, राज्य, पुत्र आदि सब कुछ प्राप्त कर लिया। इस कथा में मित्रो! सिद्धांत का प्रतिपादन है। यह बात सौ फीसदी सही है कि कमजोर-से-कमजोर आदमी, कम प्रगति का आदमी, निर्बल आदमी भी दृढ़ निश्चय के साथ, ईमानदारी के साथ अगर पारमार्थिक काम करता है, तो वह काम इतना शानदार और महत्त्वपूर्ण होगा कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते। जिस तरीके से सावित्री ने मौत को भी हरा दिया। एक छोटी-सी कन्या ने यमराज को

अपना फैसला बदलने पर मजबूर कर दिया, आप भी ऐसा कर सकते हैं।

मित्रो! अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश—ये तीनों हमारे जीवन में ऐसी शक्तियाँ हैं कि अगर इनको हम बढ़ाना चाहें, तो अपने आप को सँभालने, अपने आप को सही करने की कोशिश करें, तो हमारा जीवन धन्य हो जाए। ये हमारे जीवन के प्रत्यक्ष देवता हैं, देवस्थान हैं, अमिट स्थान हैं। सारी चीजें हमारे भीतर ही हैं। ये आंतरिक शक्तियाँ हैं। हमारा बहिरंग जीवन हमेशा भटकता रहता है। हम हर चीज को हाथ लगाकर देखते हैं। हर देवी-देवता से हम मिन्नतें करते हैं। नाक रगड़ते हैं कि आप हमारी सहायता कीजिए। हम हारे-थके दर-दर भटकते हैं। अगर हम अपने भीतर देखना शुरू करें, मंथन करें, अंत:करण में झाँकें तो हम देखेंगे कि हमारे भीतर के ये देवता किस तरीके से जाग्रत होकर हमें लाभ देते हैं। बाहर के देवता, बाहर की शक्ति, बाहर की परिस्थिति उसी हिसाब से होती है, जिस हिसाब से हमारा अंतरंग होता है। हमारा अंतरंग ठीक होगा, हमारा व्यक्तित्व ठीक होगा, हमारा मनोबल दृढ़ होगा, हमारा साहस सही होगा, संयम हमारा सही होगा। देवता इन्हीं का नाम है। हमारे जीवन में धैर्य, साहस, संयम, कर्त्तव्यनिष्ठा अगर है, तो भगवान का अनुग्रह प्राप्त होगा। भगवान का कृपा-पात्र होने के लिए हमको अपने जीवन में अध्यात्म की शक्तियों का समावेश करना और उनकी प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। अपने अंदर पात्रता का विकास करना चाहिए, अंतर्जगत के देवताओं का अनुग्रह मिलना तभी संभव है। आज मैंने तीन बातें बताईं। आशा है आप इन्हें अपने जीवन में लाने का प्रयास करेंगे और अपने गुणों का विकास करेंगे।

॥ आज की बात समाप्त ॥

'ॐ शांति'

कृपया सभी परिजन—पाठक ध्यान दें।

'अखण्ड ज्योति' एक पत्रिका मात्र नहीं, परमपूज्य गुरुदेव की चैतन्य शक्ति का दैवी प्रवाह है। इसे सभी परिजनों को जीवंत-जाग्रत बनाए रखने का हर संभव प्रयास करना चाहिए। इस वर्ष कोविड-19 के कारण पत्रिका सभी के पास देरी से पहुँची है। अधिकांश ट्रेनें बंद थीं। लगभग सभी कुछ बंद था। हमने कोशिश की कि ऑनलाइन ही सही, सभी को पढ़ने को मिलती रहे, पर वह भी दो माह देरी से मिली व सबको नहीं। अब इस वर्ष के अंत तक स्थिति सामान्य होती लग रही है।

हमें इस दिव्य ज्ञानधारा को अपने परिचय क्षेत्र में—घर-परिवार में अधिकाधिक परिजनों तक पहुँचाने का प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिए। यही हमें अपने परिजनों से अपेक्षा है। आशा है अब सभी परिजन अधिकाधिक सदस्य बनाकर गुरुसत्ता के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि समर्पित करेंगे।

वार्षिक चंदा पूर्व की भाँति दो सौ बीस रुपया ही रहेगा। आजीवन (बीसवर्षीय) एवं विदेशी चंदा भी पूर्ववत् ही रहेगा। अखण्ड ज्योति की पाठ्य सामग्री नित नूतन सूचनाओं-जानकारियों के साथ सबके पास पहुँचती रहेगी। वैज्ञानिक अध्यात्मवाद की यह पाठ्य पुस्तिका भी है। ढेरों कम्पेटिटिव परीक्षाओं में इसने छात्रों को परीक्षा उत्तीर्ण करने में मदद दी है। जीवन जीने की कला के संदेशों के द्वारा यह एक संजीवनी बन जाती है। छोटे-छोटे उदाहरणों द्वारा यह हर समय पढ़ने वाली एक पुस्तिका बन जाती है।

परिजन इस प्रवाह को अविरल बनाए रखेंगे, ऐसा विश्वास है। सभी को दीपावली पर्व एवं नूतन वर्ष की भावभरी मंगलकामनाएँ।

विश्वविद्यालय परिसर से —186

राष्ट्रसेवा के संकल्प से सिक्त हुआ विश्वविद्यालय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना का उद्देश्य सर्वत्र विकराल रूप ले रही अंधकार से भरी परिस्थितियों के मध्य प्रकाश के अवतरण की संभावना को सुनिश्चित करना है। शैक्षणिक प्रकल्पों से लेकर विद्यार्थियों के सांस्कृतिक विकास को लेकर किए जा रहे अनेक प्रयास—इस विश्वविद्यालय के इसी लक्ष्य को समर्पित हैं।

कोरोना संक्रमण के विश्वव्यापी दुष्प्रभावों के मध्य भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय अपने इसी लक्ष्य के प्रति कृतसंकल्प नजर आया। इस क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योग एवं स्वास्थ्य संकाय के आचार्य डॉ. अमृत लाल गुर्वेंद्र एवं डॉ. गायत्री गुर्वेंद्र द्वारा एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक को लिखा गया। यह पुस्तक उन विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर लिखी गई है, जो योग के क्षेत्र में यूजीसी नेट परीक्षा हेतु तैयारी कर रहे हैं।

योगामृत के नाम से रचित इस पुस्तक से ज्ञान प्राप्त करते हुए प्रतिभागीगण अपनी जीवनपद्धति को भी एक नई दिशा दे सकते हैं। इस पुस्तक में योग से संबंधित सभी पक्षों का एक समग्र प्रतिपादन प्रस्तुत किया गया है। उनके द्वारा प्राप्त की गई इस उपलब्धि पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति, कुलपति एवं श्रद्धेय कुलाधिपति द्वारा अत्यंत हर्ष व्यक्त किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के समस्त आचार्य अपनी प्रतिभा के विकास के लिए नित-निरंतर संघर्षरत रहते हैं और उनके चहुँमुखी विकास का ही यह परिणाम है कि शैक्षणिक उपलब्धियों के प्रत्येक क्षेत्र में वे अभूतपूर्व कीर्तिमानों को रचते नजर आते हैं। इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग की अध्यापिका कु. ऊषा ज्योति गुप्ता को बंगलौर स्थित एक प्रतिष्ठित संस्थान द्वारा रिसर्च एक्सलेंस अवार्ड से सम्मानित किया गया। उनको यह अवार्ड उनके द्वारा किए गए बहुउद्देश्यीय शोधों के कारण दिया गया है। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय प्रशासन द्वारा अत्यंत हर्ष एवं गौरव प्रदर्शित किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय का राष्ट्रीय सेवा योजना विभाग उसके स्थापना काल से ही जनजागरूकता के क्षेत्र में असाधारण कार्य करता आ रहा है। राष्ट्रीय सेवा योजना के समस्त सदस्यों ने सेवा को ही अपना जीवन उद्देश्य बना लिया है।

इसी लक्ष्य को पूर्ण करते हुए राष्ट्रीय सेवा योजना के समन्वयक डॉ. उमाकांत इंदौलिया एवं कार्यक्रम अधिकारी प्रखर सिंह पाल द्वारा हरिद्वार प्रशासन को 500 मास्क उपलब्ध कराए गए, ताकि संक्रमण काल में सभी प्रशासनिक अधिकारियों की सुरक्षा निश्चित हो सके। उनके द्वारा उठाए गए इस कदम की सराहना करते हुए जिला प्रशासन ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय को विशेष रूप से धन्यवाद ज्ञापित किया।

उल्लेखनीय है कि इसी वर्ष राष्ट्रीय सेवा-योजना का स्वर्ण जयंती वर्ष भी मनाया जा रहा है। इस अवसर पर राष्ट्रीय सेवा-योजना, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के द्वारा एक कार्यक्रम का आयोजन परमपूज्य गुरुदेव की प्रतिमा के सम्मुख किया गया। इस अवसर पर राष्ट्रीय सेवा-योजना के ध्वज को फहराने का कार्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय के वरिष्ठ आचार्य श्री महेंद्र शर्मा द्वारा संपन्न किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की गतिविधियाँ स्थानीय प्रशासन द्वारा बहुत प्रशंसा के भाव से देखी जाती हैं। यही कारण था कि सीआईएसएफ द्वारा आयोजित विराट वन महोत्सव कार्यक्रम के शुभ अवसर पर उनके द्वारा देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया। देशभर में 1 करोड़ वृक्ष लगाने का संकल्प सीआईएसएफ द्वारा जहाँ लिया गया है, जिसमें से 5000 पौधों को रोपने का कार्य इस कार्यक्रम के माध्यम से परिपूर्ण किया गया। इस अवसर पर सीआईएसएफ के कमांडेंट श्री टी.एस. रावत, भारतीय स्टेट बैंक की एजीएम श्रीमती रूबी मिश्रा एवं शांतिकुंज के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता भी उपस्थित रहे। ❑

अपनों से अपनी बात

महामानवों के इस समूह को अब जगाना ही पड़ेगा

वर्षों के सतत संरक्षण, दिव्यसत्ता के मार्गदर्शन, परिजनों के श्रद्धा-समर्पण का यह सुफल है कि आज गायत्री परिवार एक विश्वव्यापी प्रभावशाली संगठन के रूप में दिखाई पड़ता है। दिखने में अपना यह भवन आलीशान दिखाई जरूर पड़ता है, परंतु इसके निर्माण में असंख्यों का श्रम, समर्पण और रक्त लगा है। यदि इसकी पृष्ठभूमि त्याग और बलिदान की न रही होती तो इसे नींव डलते ही उजड़ जाना चाहिए था, परंतु अनेक आघातों के मध्य भी यदि अपना परिवार सतत प्रगति की राह पर अग्रसर दिखाई पड़ता है तो उसका मुख्य कारण यह है कि इसे बनाने में, इस उद्यान को सींचने में आत्मीयता का व पारिवारिकता का पोषण अनवरत मिला है। जिसके कारण अपनी इस बगिया का प्रत्येक पुष्प मानो ऐसा प्रतीत होता है कि उसे विधाता ने अपने ही हाथों से गढ़ा है। बड़े प्रयत्नों से जाग्रत आत्माओं का एक समूह, एक स्थान पर एकत्रित हो पाया है। इस विस्तार की सार्थकता इसके श्रेष्ठतम उपयोग में है अन्यथा 'बड़े परिवार' को 'दुःखी परिवार' बनते देर नहीं लगती।

आज अपने परिवार के अतिरिक्त कहीं भी दृष्टि दौड़ाई जाए तो मानवीय मूल्यों का पतन व्यापक स्तर पर होता दिखाई पड़ता है। बड़ा आदमी बनने की हवस हर व्यक्ति के मन में गहरे बैठ गई है। प्रश्न बड़प्पन का होता तो ऐसा करने में भला किसे आपत्ति होती, पर जब बड़प्पन की परिभाषा—वासना और तृष्णा की अंधी दौड़ बन गई हो, किसी भी कीमत पर किसी भी माध्यम से धन का उपार्जन समाज में नीति के रूप में स्वीकार्य हो, धन, पद, इंद्रियसुख के लिए तड़प भरी महत्त्वाकांक्षा को महानता माना जाने लगे तो ऐसे में सत्कर्म, धर्म, न्याय की ज्योति जलाए रखने का कार्य कौन करेगा? आज जहाँ देखें, वहाँ स्वार्थपरता और संकीर्णता की सोच प्रगतिशीलता के छद्म नाम से मानवता का ह्रास करने में लगी हुई है और ऐसे में आवश्यक हो जाता है कि अपने परिवार के लोग—गायत्री परिवार के परिजन पेट व प्रजनन की इस दौड़ से बाहर निकलकर लोक-मंगल की दिशा में सोचें।

अपने परिवार में अनेक दिव्य व जाग्रत आत्माओं का जमावड़ा है। परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी ने कभी भी अपने परिवार को बड़ा परिवार बनाने की बात नहीं सोची, वरन सदैव यह सोचा कि अपना परिवार महामानवों का समूह बने। उसे महापुरुषों के एक दिव्य समाज के रूप में देखने की अभिलाषा उनकी सदा से ही थी और सही अर्थों में मनुष्य जीवन की सार्थकता महामानव बनने में ही है।

आज समाज ऐसे ही व्यक्तियों के लिए त्राहि-त्राहि करता नजर आता है। धरती से लेकर आसमान तक उन्हीं देवमानवों के लिए पुकार है। महाकाल से लेकर महामाया तक हर शक्ति उन्हीं महामानवों का आवाहन करती नजर आती है और हमें पूर्ण विश्वास है कि अपने परिजन महाकाल की यह पुकार अनसुनी नहीं करेंगे। इन्हीं घड़ियों के लिए अपने परिवार का निर्माण हुआ है। युद्ध की भेरी बजते देख सैनिकों के शस्त्र स्वयं निकल आते हैं। बदलते वातावरण को अनुभव कर सृजनसैनिकों को स्वतः परिवर्तन के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

आज महामानवों की कमी के कारण ही सामाजिक असंतुलन दिखाई पड़ता है। पैसे और पद के भूखे लोग मक्खी-मच्छर की तरह बढ़ते दिखाई पड़ते हैं। कुरीतियों व कुसंस्कारों में वृद्धि हो रही है और इनको समूल उखाड़ने वाले परशुराम दिखाई नहीं पड़ते। महामानवों की भूमि रहा यह देश—भारत, क्या सो गया है? भेड़ियों, गिद्धों व सियारों के झुंड दिखाई पड़ते हैं तो सिंहों की गुफाएँ खाली क्यों हैं? अनीति, अत्याचार, अपराध संगठित दिखते हैं तो महामानवों का जमावड़ा दिखाई क्यों नहीं पड़ता?

इस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता महामानवों के एकत्रीकरण की है। वे उठेंगे, आगे बढ़ेंगे तो सारी वैश्विक समस्याओं व उलझनों का समूल नाश होगा। युग-परिवर्तन जैसा महान अभियान तुच्छ-निकृष्ट सोच वाले व्यक्तियों से नहीं बस, महापुरुषों जैसा चिंतन व जीवन रखने वाले व्यक्तियों से ही संभव है।

इस संसार में कोई भी वस्तु बिना मोल नहीं मिलती। दैवी अनुदान भी पात्रता की कीमत पर मिलते हैं। हाथ फैला देने से भीख भी मिल सकती है और लताड़ना भी, परंतु परिश्रम करने से छाती चौड़ी कर अपना हक माँगा जा सकता है। युग-परिवर्तन का कार्य भी भिखारियों की तरह हाथ फैला देने से संभव नहीं होगा बस, इसके लिए आगे बढ़कर महामानवों की तरह प्रयत्न करना होगा, जैसा करने की ताकत हमारे परिवार का प्रत्येक सदस्य रखता है।

परिवार के प्रत्येक परिजन को इन दिनों ऐसे आत्मबल संपन्न प्रयोगों को करने की आवश्यकता है, जो सृष्टि में झंझावात ला दें, ऐसे प्रचंड तपस्वियों की आवश्यकता है, जिनके अंतकरण से निकली अग्नि भू-मंडल को जलाकर रख दे। ऐसे भगीरथों की आवश्यकता है, जिनके तप-प्रयोग स्वर्ग से गंगा को भू-मंडल पर उतरने के लिए विवश कर दें। इससे कम में महामानव होने की पात्रता सिद्ध कर पाना संभव नहीं है। महामानव बनने के लिए जिस त्याग-बलिदान का मूल्य चुकाना पड़ता है, आत्मपरिष्कार का प्रबल पुरुषार्थ करना पड़ता है—वह महामानवों से ही संभव है, जो बनने की योग्यता गायत्री परिवार का प्रत्येक परिजन रखता है।

गायत्री परिवार का उद्देश्य प्रचारात्मक, संगठनात्मक, संघर्षात्मक और रचनात्मक मोर्चों पर उसकी उपस्थिति दिखाना व सार्थक परिवर्तन दृष्टिगोचर करना है। भीड़ इकट्ठी करके फोटो खिंचवाकर घर चले जाने का कार्य अपना नहीं है, सो वैसी सोच रखने वालों को आज ही अपना पता बदल लेने की आवश्यकता है। यहाँ युग-परिवर्तन के लिए सेना एकत्रित करने का कार्य चल रहा है। पर्यटकों और मौज-मजा देखने वाले लोगों का अपने परिवार में कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

जो स्वयं को सच्चे हृदय से पूज्यवर की योग्यता का अंग मानते हों वे बड़प्पन की आकांक्षा छोड़, महानता की आराधना प्रारंभ कर दें। समय मात्र 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' व 'हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा' जैसे नारे लगाने का नहीं, वरन इस चिंतन को अपनी जीवनशैली में आमूलचूल समाविष्ट करने का है। निस्संदेह अपने करोड़ों सदस्यीय परिवार में सार्थक रूप से वे बदलाव आ जाएँ तो फिर इस ब्रह्मांड की कोई भी शक्ति युग-परिवर्तन की इस संभावना को सच में बदलने से अब नहीं रोक सकती।

अपना विशाल परिवार एक ही प्रयोजन के लिए बनाया गया और अब तक सुरक्षित रखा गया है कि दु:खी मानव की पीड़ा हरने में, पतित समाज को उत्थान की राह दिखाने में, कीट-पतंगों की तरह जीवन जी रहे अधिसंख्य मनुष्यों को मानवीय उत्कर्ष का मर्म समझाने में अपने इस विभूतिवान परिवार का योगदान देना। उच्च आदर्शों पर चलकर स्वयं का भावनात्मक नवनिर्माण एवं समाज का उत्कृष्टताजन्य कायाकल्प यदि अपने परिवार का उद्देश्य नहीं है तो मात्र भीड़ इकट्ठी करके क्या उच्च उद्देश्य साधा जा सकता है? पूज्यवर व वंदनीया माताजी का जीवन भी तो लोकमानस में उत्कृष्टता लाने वाले देवदूत का जीवन था। उस ओर दृष्टि करने पर इन पंक्तियों का निहितार्थ स्वत: समझ आने लग सकता है।

वर्षों हम लोग साथ चले हैं और आज जब अपनी ही इस बगिया में फूल आने लगे हैं और उनसे कुछ आशा की जा रही है तो यह अनुचित भी नहीं है। प्रत्येक गायत्री परिजन का हृदय सज्जनता की कसौटी है और हममें से प्रत्येक सदस्य को जीवन में आगे बढ़ने का भाव है—इसमें किसी को शंका-संदेह नहीं। आवश्यकता मात्र इस भाव को कर्म में परिणत करने की है। ऐसे में पहला कार्य यह करने की आवश्यकता है कि जरूरत से ज्यादा धन-संग्रह पर रोक लगाई जाए।

यदि हमारा व हमारे परिवार का गुजारा एक निश्चित संपदा से चल सकता है तो सात पीढ़ियों के लिए सोचते हुए नाहक धन-संग्रह करने के स्थान पर उस धन को लोक-मंगल के लिए लगाने का प्रण लेना चाहिए। बिना परिश्रम के यदि नाती-पोतों को संपदा मिल भी जाए तो वो उनके व्यक्तित्व को कुंद ही बनाएगी और हमारे स्वयं के लिए पाप-पतन का द्वार खोलेगी, सो अलग। अपने ज्यादातर परिजन पहले ही **'सादा जीवन-उच्च विचार'** के भाव को लेकर आगे चले हैं सो उन्हें यह प्रयत्न-पुरुषार्थ करने में कोई समस्या नहीं आने वाली, पर यदि कोई भूले-भटके इस सोच से अछूता रह गया हो तो उसे आज ही इस संकल्प को मूर्त रूप देने की आवश्यकता है।

दूसरा प्रयास गायत्री परिजनों को मूढ़मान्यताओं से बाहर आकर सत्पुरुषार्थ करने का है। ईश्वर प्राणिमात्र में है और सत् आदर्शों के समुच्चय के रूप में विश्व-ब्रह्मांड में व्याप्त है। पूजा-उपासना का मूल उद्देश्य अंत:करण पर

चढ़ गए कर्म-विक्षेपों को धोकर-उतारकर फेंक देना है कि काल्पनिक ईश्वर की खुशामद में समय को गँवा देना। जो सारी सृष्टि का स्वामी है, उसका कार्य क्या हमारे धूपबत्ती दिखाने से ही चल सकेगा? गायत्री परिवार का उद्देश्य यज्ञ, संस्कार, कर्मकांड द्वारा आंतरिक सत्प्रवृत्तियों का जागरण है, पर मात्र कर्मकांड के जाल में लोगों को भटका देना नहीं। जब तक हम अच्छा इनसान बनने का प्रयत्न नहीं करते, तब तक भगवान हमारी आँखों के सामने भी बैठा हो, हमें दिखाई नहीं पड़ने वाला है।

आज की सर्वोपरि आवश्यकता भावनात्मक नवनिर्माण है और उसे ही युगधर्म मानकर प्रत्येक गायत्री परिजन को अहर्निश चलने की आवश्यकता है। हमें वाह-वाही लूटने की तुच्छता से आगे बढ़कर ये कार्य हाथ में लेने चाहिए; क्योंकि मानव जाति का भाग्य व भविष्य इन्हीं सत्प्रयासों पर निर्भर है। जिनके हृदय में अपार साहस है और जो लोग मोह के बंधनों को त्याग कर इस पथ पर चलने का पराक्रम दिखा सकते हैं, उनके लिए यह परिवार खुला है। उनके लिए ये पंक्तियाँ आवाहन हैं—वे ही सच्चे महामानव बनने की पात्रता रखते हैं और आने वाले वर्षों में युग-परिवर्तन के माध्यम बनेंगे। इन पंक्तियों के लिखे जाने के पीछे मनोभाव ये ही है कि युग-परिवर्तन के महामानवों की टुकड़ी गायत्री परिजनों से सजी हो; क्योंकि इसके बनने के पीछे मूल प्रयोजन सदा से यह ही था। ❑

कॉलिन विल्सन एक मशहूर अँगरेज लेखक थे और उन्होंने अपराध, रहस्य व पराविद्या पर लगभग 100 से अधिक किताबें लिखी हैं। अपनी आत्मकथा के प्रथम अध्याय में उन्होंने बताया है कि अपनी जवानी की शुरुआत में उन्होंने जीवन का सबसे बड़ा निर्णय लिया। उनके पिता लेस्टर में जूते बनाने के कारखाने में कर्मचारी थे। विल्सन आइंस्टीन से प्रेरित थे, लेकिन घरेलू कठिनाइयों के कारण उन्हें स्कूल छोड़कर 16 वर्ष की आयु में ही काम करना पड़ा।

एक ऊन-फैक्टरी में कुछ समय काम करने के बाद वे किसी प्रयोगशाला में सहायक बन गए। उन्होंने इस जीवन की कल्पना नहीं की थी, अतः उन पर निराशा गहराती गई। ऐसे में एक दिन उन्होंने आत्महत्या का निर्णय कर लिया। वे हाइड्रोसायनिक एसिड पीने जा रहे थे कि तभी उनके भीतर उनकी अंतरात्मा उन्हें कचोटते हुए बोली—''जीवन का यही उद्देश्य क्या तुमने सोच रखा है? क्या जीवन का अंत करना ही जीवन की समस्याओं का समाधान है?'' उसी क्षण उनके भीतर एक नई संभावना का उदय हुआ। उन्हें लगा कि जीवन में उतार-चढ़ाव तो आते ही रहते हैं और परिस्थितियों से हार मान लेने वाला किसी भी दृष्टि से विजेता नहीं कहा जा सकता। उन्होंने अपने मन को बदला और धीरे-धीरे परिस्थितियों ने भी रुख बदलना शुरू किया। उस दिन की याद करते हुए वे बाद में कहा करते थे कि वह दिन मेरे जीवन का निर्णायक दिन था। सही ही है कि मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

गीता जयंती, 25-12-2020 के अवसर पर

भगवद्गीता का सद्ज्ञान

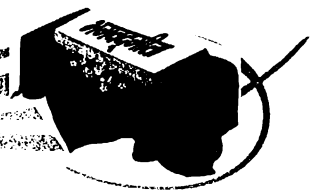

मानव जीवन में सुकर्म, करते सम्मान प्रदान हैं।
भगवत् गीता जगती को, देता सद्ज्ञान महान है॥

लोभ और लिप्सा से जग की,
विवश मनुजता सारी है।
मन में भरे असुर तत्त्वों से,
संघर्षों की बारी है।

महा विषम स्थिति में, मानव जीवन की पहचान है।
भगवत् गीता जगती को, देता सद्ज्ञान महान है॥

चिंतन चरित्र में दोष और,
दुर्गुण की मारामारी है।
विकृत विचार विष से जीवन,
रक्षा की जिम्मेदारी है।

अनाचार का कारण जग में, निज का स्वार्थ प्रधान है।
भगवत् गीता जगती को, देता सद्ज्ञान महान है॥

अहंकार, दुर्भाव, दुष्टता,
अधःपतन बीमारी है।
सद्भावों के दीप जलाएँ,
बारी आज हमारी है।

मन के भावों पर आधारित, जग के कर्म विधान हैं।
भगवत् गीता जगती को देता सद्ज्ञान महान है॥

इस युग में फैली अनास्था,
सद्बुद्धि से हारी है।
मनुज देवता बने धरित्री,
बने स्वर्ग से प्यारी है।

संवेदित मन प्राण में छिपा, नवयुग का निर्माण है।
भगवत् गीता जगती को, देता सद्ज्ञान महान है॥

—शोभाराम शशांक

वृक्ष गंगा अभियान के बढ़ते चरण

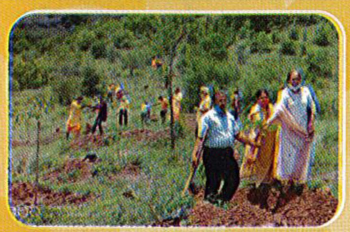

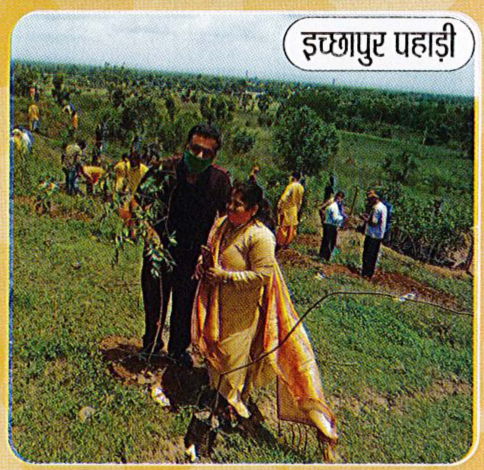

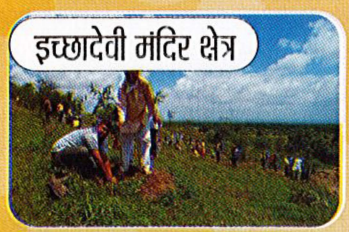

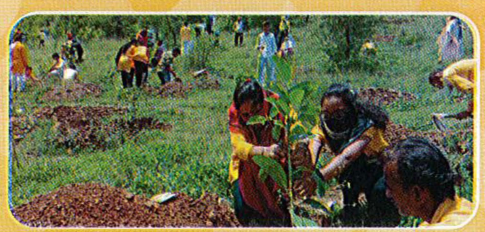

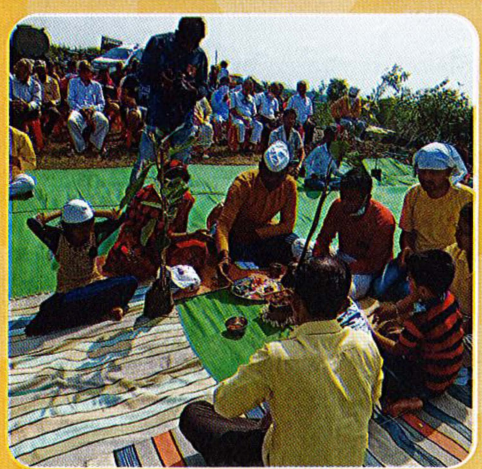

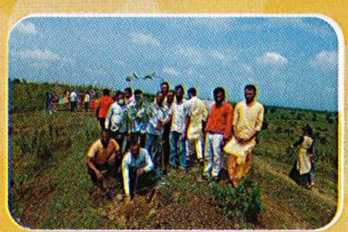

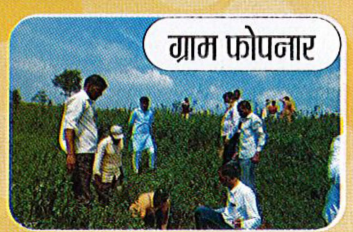

गायत्री परिवार, बुरहानपुर, मध्यप्रदेश के परिजनों द्वारा विगत दशक में नियमित रूप से संपन्न किए जा रहे तरुपुत्र महायज्ञों की फलश्रुतियाँ अब अनेक स्थानों पर सुविकसित वन-उपवन की शृंखलाओं के रूप में पर्यावरण-परिशोधन का कार्य संपन्न कर रही हैं।

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-11-2020
Regd No. Mathura-025/2018-2020
Licensed to Post without Prepayment
No: Agra/WPP-08/2018-2020

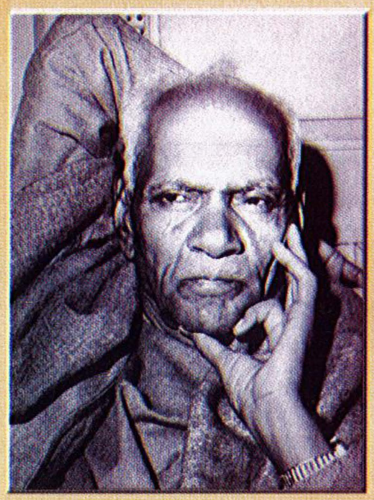

" मित्रो ! हमारे विचारों को लोगों को पढ़ने दीजिए। जो हमारे विचार पढ़ लेगा, वही हमारा शिष्य है। हमारे विचार बड़े पैने हैं, तीखे हैं। हमारी सारी शक्ति हमारे विचारों में सीमाबद्ध है। दुनिया को पलट देने का जो हम दावा करते हैं वह सिद्धियों से नहीं, अपने सशक्त विचारों से करते हैं। आप उन विचारों को फैलाने में हमारी सहायता कर दीजिए। अब हमको नई पीढ़ी चाहिए। इसके लिए आप पढ़े-लिखे,विचारशील लोगों में जाइए और हमारी विचारधारा उन तक पहुँचाइए। यही है आपके सामने युग देवता की अपील, प्रज्ञावतार की अपील, महाकाल की अपील और हमारी अपील।

– पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य "

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org